जनवरी-मार्च 2002 • छह रुपये

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

आह्वान

कैम्पस टाइम्स

संगठित हो!

2002

भविष्य आह्वान कर रहा है!

क्या तुम भविष्य की आवाज सुन रहे हो?

"मैं हूं अपनी मर्जी का मालिक?"–"क्या वाकई"

भगतसिंह के सपनों से किया गया वादा कब पूरा होगा?

कैम्पसों में छाई चुप्पी टूटने लगी है!

मक्सिम गोर्की की कहानी

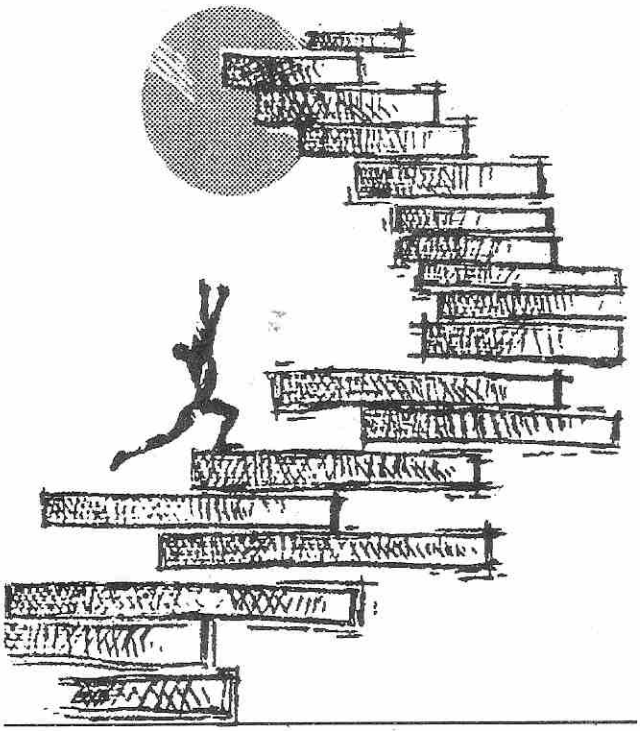

नया वर्ष
युवा दिलों के नाम
ज़िन्दा कौमों के नाम
साहसिक यात्राओं के नाम
सक्रिय ज्ञान के नाम
न्याय युद्ध में भागीदारी की
तत्परता के नाम
सच्चे प्यार के नाम
मानवता के भविष्य में
उत्कट आस्था के नाम !

नये समाज की राह के सभी युवाहृदय हमराहियों को
"आह्वान कैम्पस टाइम्स" की टीम की ओर से नये साल की
शुभकामनाएं!

आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारबिन्दु

➢ भारतीय क्रान्ति का रास्ता मेहनतकश वर्गों के नेतृत्व में साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी क्रान्ति का रास्ता है। यह नई समाजवादी क्रान्ति का रास्ता है। यह शहीदेआज़म भगतसिंह का रास्ता है। क्रान्ति ही नाउम्मीदों की उम्मीद है। रसातल के अंधेरे में जीने वालों की जिन्दगी की रोशनी है। मृत्यु के अवसाद को तोड़ने वाला उत्सव का आह्लाद है। ''आह्वान'' इस तूफान का मुक्त कंठ से आह्वान करता है। ''आह्वान'' इस तूफान का आनन्द लेने के लिए सभी युवा तूफानी पितरेल पक्षियों को न्यौता देता है।

➢ पूरा भारतीय समाज आज एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा है। अब यह सच्चाई एकदम उजागर हो चुकी है कि रुग्ण-विकलांग, बूढ़ा-बौना भारतीय पूंजीवाद आम जनता को कुछ भी सकारात्मक नहीं दे सकता। मेहनतकशों की जिन्दगी को इसने लूटमार, उत्पीड़न-शोषण और असह्य पीड़ा-व्यथा के अंधेरे रसातल में ढकेल दिया है। अथाह दुखों के सागर में ऐश्वर्य के द्वीप और विलासिता की मानारें, संसद में पूंजीपतियों की दलाल चुनावी पार्टियों की बहसबाजों की धींगामुश्ती, विदेशी लुटेरों को लूट की खुली छूट, भ्रष्टाचार के नित-निरन्तर भंग होते कीर्तिमान, संवेदनाओं को कुंद करती विकृत-बीमार साम्राज्यवादी-पूंजीवादी संस्कृति का धीमा जहर, संचार माध्यमों पर पूंजी की सर्वग्रासी पकड़, दिवालिया अर्थतंत्र, नंगा राजनीतिक तंत्र, बिकता न्याय, बेतहाशा मंहगी होती जा रही निरर्थक अनुपयोगी- अवैज्ञानिक शिक्षा, मामूली चिकित्सा के अभाव में मरते लोग—यही आज का वह नारकीय सत्य है जिसे फिलहाल, हारी हुई मानसिकता के शिकार लोगों ने अपनी नियति मान लिया है। इसे बदलने का रास्ता क्रान्ति का रास्ता है। क्रान्ति कठिन है, क्रान्ति का रास्ता लम्बा है, ध्वंसकारी है, पर इसके बिना नये का निर्माण असम्भव है। यही आज का ठण्डा सत्य है—नंगा सत्य है—पर यही मुक्तिदायी सत्य है। यही 'आह्वान' का निर्भीक उद्घोष है।

इस अंक में

पाठक मंच 4

अपनी ओर से

क्या तुम भविष्य की आवाज सुन रहे हो? 5

शिक्षा जगत

कैम्पसों में छाई चुप्पी टूटने लगी है 8

अमित की जिन्दगी को किसका ग्रहण लग गया? 9

विशेष

भगतसिंह के सपनों से किया गया वादा कब पूरा होगा? 11

नौजवानों के बारे में कुछ विचार —माओ त्से-तुङ 16

युवा चिन्तन

मैं हूं अपनी मर्जी का मालिक—क्या वाकई? 13

कविता

अगर तुम युवा हो —शशि प्रकाश 7

भिखमंगे —मनबहकी लाल 23

कहानी

युवा इटली —मक्सिम गोर्की 30

अन्तर्दृष्टि

छिः! थू! धिक! लानत है! 21

दुनिया-जहान में

नेपाली अवाम की आवाज को कुचला नहीं जा सकता 25

अर्जेण्टीना : मुद्रा कोष-विश्व बैंक की नीतियों का कहर 26

सामयिकी

भविष्य से भयाक्रांत शासक वर्ग का नया हथियार—'पोटो' 28

आह्वान
कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 10 अंक 3 जनवरी-मार्च 2002

सम्पादक मण्डल
मुकुल/कविता/अभिनव

सज्जा
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य
छह रुपये

वार्षिक
चौबीस रुपये
(डाक व्यय सहित 32 रुपये)

सम्पादकीय कार्यालय : कल्याणपुर, गोरखपुर-273001 फोन : 338922

स्वत्वाधिकारी आदेश सिंह द्वारा नौजवान कार्यालय, कल्याणपुर, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित।

भगतसिंह ने कहा

"देश को तैयार करने के भावी कार्यक्रम का शुभारम्भ इस आदर्श वाक्य से होगा—"क्रान्ति जनता के द्वारा जनता के हित में।" दूसरे शब्दों में, 98 प्रतिशत के लिए स्वराज्य। स्वराज्य जनता द्वारा प्राप्त ही नहीं बल्कि जनता के लिए भी, यह एक बहुत कठिन काम है। यद्यपि हमारे नेताओं ने बहुत से सुझाव दिये हैं, लेकिन जनता को जगाने के लिए कोई योजना पेश करके उसपर अमल करने का किसी ने भी साहस नहीं किया। बिस्तार में गये बगैर हम यह दावे से कह सकते है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूसी नवयुवकों की भाँति हमारे हजारों मेधावी नौजवानों को अपना बहुमूल्य जीवन गांवों में बिताना पड़ेगा और लोगों को समझाना पड़ेगा कि भारतीय क्रान्ति वास्तव में क्या होगी। उन्हें समझाना पड़ेगा कि आने वाली क्रान्ति का मतलब केवल मालिकों की तब्दीली नहीं होगा। उसका अर्थ होगा नयी व्यवस्था का जन्म—एक नयी राजसत्ता। यह एक दिन या एक वर्ष का काम नहीं है। कई दशकों का अद्वितीय आत्मबलिदान ही जनता को उस महान कार्य के लिए तत्पर कर सकेगा और इस कार्य को केवल क्रान्तिकारी युवक ही पूरा कर सकेंगे।"

—भगतसिंह

('विद्यार्थी और राजनीति', जून, 1928 में 'किरती' पत्रिका में प्रकाशित लेख)

एक अपील

'आह्वान कैम्पस टाइम्स' सारे देश में चल रहे वैकल्पिक मीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, फण्डिंग एजेंसियों, पूंजीवादी घरानों एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। जनता का वैकल्पिक मीडिया सिर्फ जन संसाधनों के बूते खड़ा किया जाना चाहिए—हमारी यह दृढ़ मान्यता है।

अतः हम अपने सभी पाठकों-शुभचिन्तकों-सहयोगियों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम सम्भव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मजबूती प्रदान करें।

पाठक मंच

शहीदे आजम के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है पत्रिका

सर्वप्रथम 'आह्वान' जैसा बेलौस त्रैमासिक निकालने हेतु बधाई। पत्रिका वस्तुतः शहीदे आजम भगत सिंह के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। आद्योपांत समसामयिक एवम् ज्वलंत मुद्दे और अंतिम आवरण पृष्ठ का आह्वान "उनके लिये जिनकी आत्मा युवा और जिन्दा है" रुचिकर लगा।

मेरी युवावस्था से ही भगत सिंह के प्रति रुचि थी, जो 25 वर्ष की वय होते-होते कुख्यात इमरजेंसी काल में युवा आक्रोश को व्यक्त करने हेतु स्वलिखित नाटक "भारत के अमर शहीद" के मंचन के माध्यम से प्रस्फुटित हुई। जनपद हरदोई के शाहाबाद नगर में इस नाटक का अब तक 5-6 बार मंचन हो चुका है।

शहीदे आजम के प्रति अपने भावोद्गार रख रहा हूं:

सम्प्रति भगत सिंह!
शहीदे आजम!
सौभाग्यशाली थे तुम,
जो जामे शहादत पीकर
अमर हो गये।
और शायद मूढ़ थे फिरंगी,
जिन्होने तुम्हारे यश की मनोरम सुगंध
देश ही नहीं विश्व में फैलने दी।
भले ही मुट्ठी भर राख
विनष्ट हो गयी।
पर छोटे से यशस्वी जीवन
को मिला भरपूर मूल्य और स्नेह।
किन्तु स्वतंत्र भारत के तुम्हारे
विचारों से अनुप्राणित लोग,
शायद आजाद तो हैं-किन्तु हैं भाग्यहीन।
क्योंकि वे देख रहे हैं-
कि और भी विद्रूप हुआ है,
"मनुष्य द्वारा मनुष्य का
राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का शोषण"
छला जा रहा है मेहनतकश,
मजदूर किसान और तुम्हारा सर्वहारा,
बहरों को सुनाने के लिये
धमाके की जरूरत
आज शायद पहले से कहीं
ज्यादा प्रासंगिक है,
दूसरी ओर क्रूर अट्टहास कर
रहा है पूंजीवाद।
समग्र व्यवस्था भी बदतर हुई है
और असहाय व दिशाहीन है युवा
क्योंकि आज तुम्हारा अनुसरण
करने वाला घोषित कर दिया जायेगा।
"लोकतंत्र विरोधी" "देशद्राही"
या फिर पागल
क्योंकि आज देश के ध्वजवाहक-
ये लोकतंत्र के रक्षक हैं बहुत शातिर
इसलिये कहता हूं-
सौभाग्यशाली थे तुम - भगत सिंह।

—जयराम दास रस्तोगी,
लखनऊ

लड़ना तो जिन्दगी है

लड़ना तो जिन्दगी है,
लड़ते ही जाना होगा।
चाहे लाख तूफां आये,
मंजिल को पाना होगा।
चाहे गम की आंधियां हों,
या मुकिलों के बादल।
बढ़ते ही जाना होगा,
बस मुस्कुराना होगा।
लाखों तड़पते इंसान,
मरते हैं मौत के बिन।
सोया हुआ जमाना,
हमको जगाना होगा।

—पुखराज "निराला"
मण्डी धनौरा(जे.पी. नगर)

पोटो- एक आफत

वाजपेयी हों या मुशर्रफ या बुश हों सभी अपनी-अपनी सत्ता को मजबूत करने में लगे हैं। ये जनता के सामने नकली आंसू बहाकर सबको मूर्ख बनाते हैं और आतंकवाद के समाधान हेतु नयी-नयी आफत तैयार करते हैं। जिसका सबसे ज्यादा नुकसान आम

(पृष्ठ 32 पर जारी)

क्या तुम भविष्य की आवाज सुन रहे हो?

अपनी ओर से

नयी सदी का पहला वर्ष दुनिया के पैमाने पर भारी उथल-पुथल भरा रहा है। देश के पैमाने पर अर्थव्यवस्था को "उदारीकरण"-निजीकरण की नीतियों के जरिये जिस तबाही की ओर धकेला जा रहा है वह तीव्र गति से साकार हो रही है। पिछले वर्ष जितनी राजनीतिक सरगर्मियां दिखाई दीं उनमें पूजीवादी शक्तियों की खीचतान- हो हल्लों की ही प्रधानता रही। मेहनतकशों के कुछ छिटपुट आन्दोलन जरूर हुए,. लेकिन फिलहाली तौर पर कुल मिलाकर एक पस्ती का आलम ही दिखाई दिया। मेहनतकशों के खेमें से जो सरगर्मियां हुई थीं, उनमें भी पूंजीवादी-अवसरवादी ट्रेड यूनियनों की रस्मी-कर्मकाण्डी कार्रवाइयाँ ही मुख्य रुप से उभरकर सामने आयीं । इन रस्मी कार्रवाईयों ने जनता की पस्ती को बढाने का ही काम किया। अगर हम राष्ट्रीय परिदृश्य पर बारीकी से नजर डाले तो देश के पूँजीवादी व्यवस्था के संकट के कई लक्षण मुखरता से प्रकट हुए, पर प्रतिरोध के स्वर कमजोर ही रहे।

देश के तमाम कैम्पसों में पिछले कुछ वर्षों से जो एक सन्नाटा पसरा हुआ है उसके टूटने के कोई संकेत भी नजर नहीं आये। पूँजीवादी छात्र संगठनों या व्यक्तिवादी-कैरियरवादी बुर्जुआ छात्र नेताओं की ओर तो आम छात्रों ने उम्मीद के साथ देखना कभी का बन्द कर दिया था, नामधारी वामपन्थी छात्र संगठन भी आम छात्रों की नजर से उतर चुके हैं। पिछले कुछ वर्ष उनके तीव्र पराभव के रहे हैं। कहीं-कहीं तो वे शीतनिद्रा में चले गये प्रतीत होते हैं।

चाहे शिक्षा के साम्प्रदायिकीकरण का मुद्दा हो या बिड़ला-अम्बानी रिपोर्ट के जरिये थोपी जा रही घोर पूंजीपरस्त नीतियों के विरोध का सवाल हो, एस.एफ.आई. ए. आई. एस. एफ. और आइसा जैसे नाम धारी वामपन्थी छात्र संगठन इन सवालों पर कोई कारगर विरोध संगठित करने की स्थिति में हैं ही नहीं। ये अब कुछ रस्म अदायगी कर किसी तरह कुछ महानगरीय केन्द्रों में अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिए ही विशेष रूप से सचेष्ट रहे हैं। जे. एन. यू. जैसे सामाजिक जनवाद के कुछ बचे-खुचे केन्द्रों में छात्र संघ चुनाव में अगर वे जीत दर्ज कर लें रहे हैं तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। ऐसी जगहों पर भी अब रैडिकल वाम छात्र राजनीति की बची-खुची उपस्थिति का भी तीव्र लोप हो रहा है और एस. एफ. आई. - आइसा मार्का वामपन्थी संगठन ज्यादा से ज्यादा बुर्जुआ सुधारवादी चरित्र ग्रहण करते जा रहे हैं।

इसके साथ ही, जो क्रान्तिकारी वाम छात्र राजनीति की धारा से जुड़े छात्र संगठन कैम्पसों में मौजूद रहें हैं। उनका ठहराव विघटन भी गंम्भीर हुआ है। इनमें से कुछ अभी भी क्रांतिकारी वामपंथी छात्र राजनीति की जुगली करते हुए तेजी के साथ विपथगामी होने की ओर अग्रसर हैं। बेहतर होता कि इन्हें जहां जाना है वहां जल्दी से जल्दी पहुंच जाते। तब नये विकल्पों के लिए ज्यादा अनुकूल हालात पैदा हो सकते थे। इसके साथ ही, कुछ छात्र संगठन ऐसे हैं जिनमें ईमानदार- निष्ठावान कार्यकर्त्ता मौजूद हैं लेकिन ठोस परिस्थितियों की गलत समझ के कारण वर्तमान कठिन समय में छात्रों-युवाओं की कसौटी पर खरे नहीं उतर पाये हैं। साफ-साफ कहा जा सकता है कि इनके पास कोई वैकल्पिक कार्यक्रम मौजूद नहीं जो आम छात्रों को आकृष्ट कर सके।

क्रांतिकारी छात्र राजनीति की धारा से जुड़े छात्र संगठनों में कुट तो घनघोर कठमुल्ले हैं जो वैचारिक संकीर्णता के शिकार हैं। क्रांतिकारी जनदिशा लागू करने में यानी आम छात्र-युवा आबादी को व्यापक रूप में जागरुक,गोलबंद और संगठित करने में तो ये पहले ही विफल सिद्ध हो चुके हैं। अब उनकी विफलता कठिन हालात के मद्देनजर साफ-साफ दिखायी दे रही है। समाज और राजसत्ता का विश्लेषण करने के नाम पर ये चाहे जितनी गर्म बाते करें, उनके चिंतन में वर्गीय पहुंच का अभाव साफ-साफ दिखायी देता है। जब ये छात्र-युवा आन्दोलन की बात करते हैं तो छात्र-युवा आबादी की वर्गीय संरचना की अनदेखी कर देते हैं। वे या तो गैरवर्गीय भाषा में छात्र-युवाओं के भीतर देशभक्ति के जज्बों को उभाड़ने की कोशिश करते हैं या फिर घिसे-पिटे यांत्रिक ढंग से सामन्तवाद-साम्राज्यवादी संघर्षों की शिरकत करने का आह्वान करते हैं। आज के समय में छात्र-युवा आबादी के वर्ग हितों की आवाज उठाकर मेहनतकशों के बेटे-बेटियों को ललकारने की जरूरत है। लेकिन ऐसा करने में असफल होते हुए ये छात्र संगठन अधिक से अधिक जुझारू(रैडिकल) सुधारवादी कार्रवाइयों से आगे नहीं बढ़ पाते।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे वाम नामधारी छात्र संगठन भी हैं जो कुछेक महानगरों में केन्द्रित रहते हुए कुछ वैचारिक-सांस्कृतिक अनुष्ठान करते हुए समय-समय पर अपने जिंदा रहने का सबूत देते रहते हैं। अतीत की निरन्तरता के आधार पर समय-समय पर किसी प्रगतिशील-वामपंथी बुद्धिजीवी का व्याख्यान कराते हुए या कुछेक कॉलेजों में छात्रसंघ चुनावों में कुछ प्रत्याशी खड़ा कर, शिक्षा के निजीकरण, साम्प्रदायिकीकरण आदि के खिलाफ कुछ रस्मी राजनीतिक कवायद करते हुए वैकल्पिक छात्र राजनीति का केन्द्र होने का दम भरते रहते हैं। इससे इतर ये छात्र हितों के लिए संघर्षकरनेके नाम पर मध्यवर्गीय-आत्मकेन्द्रित-स्वार्थी-व्यक्तिवादी-कैरियरवादी युवा मानस का तुष्टीकरण कर रहें हैं। इनके कलेजे में यह दम ही नहीं कि वे आम छात्रों का सीधे-सीधे आह्वान करें कि वे आज रोजगार की अपनी मांग को छंटनी के शिकार, तबाह-बरबाद हो रहे, दर-बदर किये मेहनतकशों के संघर्षों के साथ जोड़ें। अपनी मध्यवर्गीय

सोच, हिचक-संकोच से मुक्त हो अपने सपनों को मेहनतकशों के सपनों से जोड़ लें!

ऐसी 'प्रगतिशील' छात्र संगठन उन कैरियरवादी तत्वों के जमावड़े बनते जा रहे हैं जो कुछ दिन तक छात्र-आन्दोलन का शौक पूरा कर लेने के बाद इस या उस एन.जी.ओ. का द्वार खटखटाने पहुंच जाते हैं। ये छात्र संगठन एक गलत नेतृत्व के पुछल्ले बने हुए सुविधाजनक वाम के ऐसे रास्ते पर कदम बढ़ा रहे हैं जो हमारे लिए चिन्ता और परेशानी का सबब है!

कुल मिलाकर, आज हमें परिवर्तनकामी छात्र राजनीति के भीतर से भी ऐसे आह्वान का अभाव नजर आ रहा है जो युवा मानस पर मारक चोट करे, उसे बेचैन कर दे और उसे अपने मध्यवर्गीय मानस की सीमाओं को तोड़ने के लिए प्रेरित कर सके, जो उसे महज अपने निजी कैरियर के व्यामोह में डूबे रहने या व्यवस्था की चौहद्दी में ही पड़े रहने की मृगमरीचिका से बाहर निकालकर मेहनतकशों के संघर्षों के साथ जुड़ने के लिए ललकार सके।

ऐसे में यह हमारी सदिच्छा हो सकती है कि क्रांतिकारी वामपंथी छात्र संगठन अगर एकजुट हो जायें तो छात्र राजनीति को मौजूदा गतिरोध से बाहर निकाला जा सकता है। कड़वा सच यह है कि इन छात्र संगठनों में से अधिकांश का स्वरूप-संरचना और शिक्षा ऐसी बन चुकी है कि अब इन्हें ही लेकर कुछ जोड़-तोड़कर, कुछ मोर्चे बनाकर, कुछ एकताएं कर देश व्यापी छात्र आन्दोलन को क्रांतिकारी दिशा देने की बात सोच पाना कठिन होता जा रहा है। निस्सन्देह, इन छात्र संगठनों में कुछ क्रांतिकारी तत्व मौजूद हैं और यदि कोई सच्चा क्रांतिकारी ध्रुव विकसित हो तो उसके इर्द गिर्द ये लामबंद हो सकते हैं लेकिन आजकल जिनके झंडे तले वे हैं, वहां रहते हुए यह लामबंदी फिलहाल मुश्किल प्रतीत होती है।

आज जरूरत है एक नयी शुरूआत की, छात्र-युवा आन्दोलन के एक नये कार्यक्रम की, नये एजेण्डे की। आज कैम्पसों में जनतंत्र का जो हाल है, नयी शिक्षा नीति लागू होने के बाद छात्र युवा आबादी की संरचना में जो बदलाव आये हैं उन्हें देखते हुए क्रांतिकारी छात्र-युवा आन्दोलन का पुराना सांचा और खांचा काम नहीं आने वाला । नयी शुरूआत के लिए आज इस सच को हमें स्वीकार कर चलना होगा कि चाहे दिल्ली वि. वि. हो , बी.एच.यू. या इलाहाबाद विश्वविद्यालय, या छात्र राजनीति के गढ़ माने जाने वाले अन्य विश्वविद्यालय हों, छात्र-युवा आबादी विगत दस वर्षों में अपने अधिकारों की लड़ाई किश्तों में ठीक उसी तरह हार चुका है, जिस तरह मजदूर वर्ग फिलहाल शासकों के हमलों के खिलाफ अपनी लडाई हार चुका है। यथार्थ चाहे जितना अप्रीतिकर हो, उसे आँखें दो-चार किये बिना नयी शुरूआतों की जमीन नहीं तलाशी जा सकती।

बढ़ती फीसों और घटती सीटों से आज कैम्पसों में छात्र आबादी भी बहुत कम रह गयी है। जो हैं भी उनमें से भारी संख्या ऐसे छात्रों की है जो खाते-पीते घरों के स्वार्थी-कैरियरवादी, सामाजिक सरोकारों से रहित लाडले हैं। ये छात्र उन परिवारों से आते हैं जिनका इस व्यवस्था में न केवल गुजर-बसर हो जा रहा है , बल्कि अच्छी तरह गुजर-बसर हो रहा है। इसलिए छात्र-युवा आन्दोलन को आज उन छात्रों से जोड़ना होगा जो इन कैम्पसों से ठेल दिये गये है, जो महानगरों की निम्नमध्यवर्गीय रिहायशी इलाकों में, दूर-दराज कस्बाई ग्रामीण क्षेत्रों में हताश-कुण्ठित अपने भविष्य के अन्ध कूप में डूब उतरा रहे हैं। इनमें से बहुतेरे युवाओं को आज फैक्टरियों के गेट के सामने दिहाड़ी मांगने वालों की कतार में देखा जा सकता है। इतना ही नहीं, आज छात्र-युवा आन्दोलन को प्रत्यक्षतः व्यापक मेहनतकश अवाम के पूंजी विरोधी संघर्षों से जुड़ना होगा। उन मेहनतकशों से जिनके ऊपर पूरे देश का मुट्ठीभर परजीवी वर्ग लदा हुआ है और जिनके बोझ तले इनकी जिंदगी पिस रही है।

आज की परिस्थिति में शहीदे-आजम भगतसिंह के इस उद्धरण की विशेष प्रासंगिकता उभर आयी है:

"नौजवानों को क्रान्ति का यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुंचाना है, फैक्टरी-कारखानों के क्षेत्रों में, गंदी बस्तियों और गांवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।"

भगत सिंह ने जनता के वास्तविक आजादी को सामाजवादी क्रांति से जोडा था और मेहनतकशों से जुड़ने के लिए युवाओं का आह्वान किया था। उन्होनें बहुत दृढ़ और दो टूक शब्दों में यह आकलन प्रस्तुत किया था कि जब तक सारी सत्ता मेहनतकशों के हाथ में नहीं आयेगी तब तक जनता की आजादी का सपना पूरा नहीं होगा।

...और आज देश को राजनीतिक आजादी मिले आधी सदी से अधिक का समय गुजर चुका है। इस अवधि में औसतन दो पीढ़ियां युवा हो चुकी हैं और तीसरी पीढ़ी यौवन की चौहद्दी में प्रवेश कर चुकी है। पर भगत सिंह का सपना अभी यथार्थ की जमीन में रोपा नहीं जा सका है।

आखिर हम उस आह्वान की कब तक अनसुनी करते रहेगें? सपनों को टालते रहने से वे मुरझा जाते हैं। इसलिए, आज हम नये सिरे से सभी सच्चे, बहादुर, इन्साफपसंद सपने देखने वालों नौजवानों का आह्वान करते है कि एकजुट हो जाओ, संगठित हो जाओ! " क्रांतिकारी तूफ़ानों में उड़ाने भरने के लिए अपने पंखों को तोलो"—भविष्य यह आह्वान कर रहा है। क्या तुम इस आवाज को सुन रहे हो?

अगर तुम युवा हो !

शशि प्रकाश

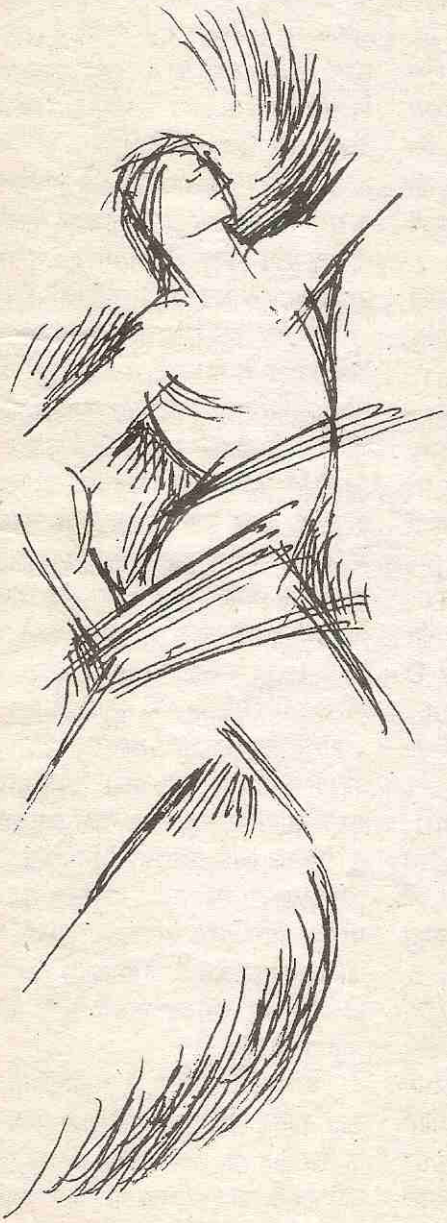

जहां स्पन्दित हो रहा है बसन्त
हिंस्र हेमन्त और सुनसान शिशिर में
वहां है तुम्हारी जगह
अगर तुम युवा हो!

जहां बज रही है भविष्य-सिम्फनी
जहां स्वप्न खोजी यात्राएं कर रहे हैं
जहां ढाली जा रही हैं आगत की साहसी परियोजनाएं,
स्मृतियां जहां ईंधन हैं,
लुहार की भाथी के कलेजे में भरी
बेचैन गर्म हवा जहां जिन्दगी को रफ्तार दे रही है,
वहां तुम्हें होना है
अगर तुम युवा हो!

जहां दर-बदर हो रही है ज़िन्दगी,
जहां हत्या हो रही है जीवित शब्दों की
और आवाज़ों को क़ैद-तन्हाई की
सज़ा सुनाई जा रही है,
जहां निर्वासित वनस्पतियां हैं
और काली तपती चट्टानें हैं
वहां तुम्हारी प्रतीक्षा है
अगर तुम युवा हो!

जहां संकल्पों के बैरिकेड खड़े हो रहे हैं
जहां समझ की बंकरें खुद रही हैं
जहां चुनौतियों के परचम लहराये जा रहे हैं
वहां तुम्हारी तैनाती है
अगर तुम युवा हो!

हरियाणा में जुझारू छात्र आन्दोलन

कैम्पसों में छाई चुप्पी टूटने लगी है

पंकज

मंहगी शिक्षा, बढ़ती बेरोजगारी, दोहरी शिक्षा प्रणाली और ऊपर से नादिरशाही तंत्र, तुगल की प्रशासन – ये छात्र-युवा आक्रोश को सुलगा रहे है। कभी भी यह विस्फोट का रूप धारण कर सकते हैं। ऊपरी तौर पर कैम्पसों में व्याप्त सन्नाटा भविष्य में उठ खड़े होने वाले किसी गंभीर तूफान का संकेत दे रहा है। देश के कैम्पसों में समय-समय पर स्वयंस्फूर्त तरीके से उठ खड़े होने वाले आन्दोलन बता रहे हैं कि सब्र के बांध की चौहद्दियां अब टूटने वाली हैं।

हरियाणा के कुछ जिलों में पिछले दिनों हुए छात्र आन्दोलन को यदि हम देखें तो कहा जा सकता है कि यदि इस विस्फोट के लिए छात्रों ने पहले से तैयारी की होती तो यह आन्दोलन भविष्य के तूफानों की अगवानी की पूर्व पीठिका तैयार कर जाता। मात्र कुछ राहतें नहीं, बल्कि एक बड़ी जीत हम हासिल कर पाते। दो दिन सड़कों पर निकल पड़े छात्रों ने सिर्फ विश्वविद्यालय प्रशासन ही नहीं, बल्कि सत्ताधारियों की भी नींद हराम कर दी थी।

छात्रों के जबरदस्त विरोध के कारण महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय(रोहतक) को परीक्षाओं में तीन सेट प्रणाली लागू करने के अपने फरमान को वापस लेने पर मजबूर होना पड़ा। अड़ियल रुख अपनाये हुए वि. वि. प्रशासन को छात्रों से बात करने के लिए आखिरकार झुकना पड़ा। वि. वि. प्रशासन को कहना पड़ा कि "नकल रोकने के लिए" बनायी गयी यह तीन सेट प्रणाली अगले शिक्षण सत्र से लागू की जायेगी।

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के इस निर्णय के आते ही – कि इस बार स्नातक और परास्नातक की परीक्षाओं में एक प्रश्न पत्र के तीन सेट होगें – छात्र-छात्राएं सड़क पर उतर पड़े। 8 जनवरी की सुबह से ही महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आने वाले सभी जिलों के छात्रों ने वि. वि. के इस हिटलरी फरमान के विरोध में आवाज बुलंद करना शुरू कर दिया। देखते- देखते आन्दोलन इतना विस्तारित हो चला कि स्थानीय अखबारों कों लिखना पड़ा की "हरियाणा में काफी अर्से बाद किसी मुद्दे पर छात्र राजनीति गरमाई है।"

छात्रों की आवाज को कुचलने के लिए पुलिस ने बर्बर लाठी चार्ज किया। रोहतक में दिल्ली बाईपास पर एकत्रित छात्रों को , जो कि विश्वविद्यालय प्रशासन के जिम्मेदार अधिकारियों से मिलने की मांग कर रहे थे, पुलिस ने दौड़ा-दौड़ा कर पीटा। सड़क पर शातिपूर्वक बैठे छात्रों पर पुलिस ने जमकर लाठियां बरसाईं। आस-पास की छत पर जमा छात्रों को भी उतार - उतारकर पीटा गया। उत्तेजित छात्रों ने पुलिस से मोर्चा लिया और जबाबी पथराव किया। हरियाणा पुलिस को इस तरह छात्रों ने बताया कि छात्र असंतोष को लाठियों-गोलियों से दबाया नहीं जा सकता।

नौ जनवरी को रेवाड़ी , नारलौल , महेन्द्रगढ़ , फरीदाबाद , झज्जर तथा सोनीपथ में शानदार छात्र प्रदर्शन हुए। सोनीपत को छोड़ बाकी जिलों में आन्दोलन स्वतःस्फूर्त ढंग से आगे बढ़ा।

सोनीपत जिले में आन्दोलन में दिशा छात्र संगठन ने पहलकदमी लेकर एक छात्र संघर्ष समिति का निर्माण किया , जिसमें सभी छात्रों को साथ लेकर चलने का प्रयास किया गया। वि. वि. कुलपति के इस बयान से – कि वह छात्रों के दबाव के आगे नहीं झुकेंगे – आक्रोशित छात्रों को लेकर छात्र संघर्ष समिति ने सी. आर. ए. कालेज परिसर में एक सभा की। पुलिस की सभा भंग करने की कुत्सित मंशा के बावजूद सभा शानदार ढंग से सम्पन्न हुई। इस सभा में वक्ताओं ने कुलपति के तानाशाही रवैये तथा पुलिसिया दमन की कड़े शब्दों में निंदा की। छात्र संघर्ष समीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे दिशा छात्र संगठन ने स्पस्ट किया कि मुद्दा सिर्फ तीन सेट प्रणाली नहीं है, छात्रों का गुस्सा कुलपति और वि. वि. प्रशासन के नादिरशाहाना रवैये और छात्रों के लोकतांत्रिक अधिकारों पर कुठाराघात के खिलाफ है। छात्र संघर्ष समिति ने इस मौके पर विश्वविद्यालय कुलपति के नाम एक ज्ञापन प्राचार्य को सौंपा।

अन्याय के खिलाफ उठ खड़े हुए छात्रों के गुस्से को स्वर देते हुए दिशा छात्र संगठन ने एक पर्चा निकाला। जिसमें यह सवाल उठाया गया कि जब वोट देकर सरकार चुनने का अधिकार हमें दिया गया है तो हमारी शिक्षा नीति के निर्धारण में हमारे मत की उपेक्षा करना हमारे जनतांत्रिक अधिकार को छीनना नहीं तो और क्या है। नकल रोकने की वि.वि. प्रशासन की "सदिच्छा" पर चोट करते हुए कहा गया कि छात्र को नकल करने पर अपराधी घोषित कर दिया जाता है, जबकि असल अपराधी तो वह शिक्षा व्यवस्था है जो छात्र को नकल करने के लिए मजबूर करती है। आम जनता के बेटे-बेटियों की योग्यता को उनकी डिग्री और अंकों से मापा जाता है। यह शिक्षा रोजगार की कोई गारण्टी नहीं देती। शिक्षा प्राप्त करना बोगस, उबाऊ, नीरस काम बन चुका है। पूरी शिक्षा व्यवस्था इतनी निरंकुश और मानवद्वेषी हो चुकी है कि हर साल सैकड़ों मासूम छात्र थक-हारकर निराशा में आत्महत्या कर लेते हैं। ऐसी शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ बगावत करना पूरी तरह न्यायसंगत है।

दरअसल, हरियाणा के तमाम जिलों में फूटा छात्रों का यह गुस्सा पूरी शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ आम छात्र के दिल में गहरे तक बैठी नफरत का ही इजहार था। नेतृत्वहीनता के बावजूद आन्दोलन फैलता जा रहा था,

छात्र लम्बी लड़ाई के लिए कमर कस रहे थे। दो दिन में ही वि. वि. प्रशासन छात्रों के एकजुट विरोध से भयभीत हो उठा।

छात्रों की इस फिलहाली जीत से वि. वि. प्रशासन के नापाक मंसूबों को धूल चाटनी पड़ी है। लेकिन यदि छात्रों की चौकसी ढीली पड़ी तो फिर किसी हिटलरी फरमान का खतरा सिर पर मंडराने लगेगा। ऐसा नहीं है कि इस जीत से शिक्षा व्यवस्था में कोई बड़ा बदलाव हो जायेगा या जनविरोधी शिक्षा नीति की दिशा उलट जायेगी। यह जीत एक बार फिर यह याद दिलाती है कि मेहनतकशों के बेटों के सामने संघर्ष के अलावा और कोई रास्ता नहीं है, जिससे कि वह अपने दुखों से निजात पा सके।

इस आन्दोलन में छात्राओं की सक्रिय शिरकत महत्वपूर्ण रही। छात्राओं ने अपने छात्र साथियों के साथ जुलूस-प्रदर्शन में हिस्सा लिया ही, तमाम स्थानों पर छात्राओं ने अपने विद्यालयों में पहलकदमी ली। सोनीपत के हिन्दू कन्या महाविद्यालय की छात्राओं ने संघर्ष में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने के साथ ही अपने महाविद्यालय में कक्षाओं का बहिष्कार किया और शहर में शानदार जुलूस निकाला।

इस विस्फोट ने भविष्य की दिशा को इंगित कर दिया है। यह आन्दोलन यह शिक्षा दे रहा है कि महंगी होती शिक्षा और लगातार घटते रोजगार के इस दौर में हमें भविष्य में होने वाले विस्फोटों के लिए खुद को अभी से तैयार करना होगा। नेतृत्वहीनता और स्वतःस्फूर्तता की स्थिति में आन्दोलन बिखर जाता है, एक अराजक भीड़ बनकर रह जाता है। इसलिए आज सबसे जरूरी है कि छात्रों को अपने भीतर से सही, स्पष्ट वैज्ञानिक विचाधारा से लैस क्रान्तिकारी छात्र नेतृत्व को पैदा करना होगा और क्रान्तिकारी छात्र संगठन खड़े करने होंगे।

अमित की जिन्दगी को किसका ग्रहण लग गया?

प्रवीण

अमित नहीं रहा। अमित पूनिया ने आत्महत्या कर ली। वह 16 वर्ष का था। वह जीना चाहता था। उसे नहीं जीने दिया गया। बड़े होकर बड़ा आदमी बनना है—एक ही रट। मां-बाप, नाते-रिश्तेदार, पास-पड़ोसी, सर-मैडम। एक ही रट—बड़ा आदमी बनना है। नहीं मैं बड़ा आदमी नहीं बनना चाहता। क्यों? आखिर क्यों? मुझे गणित नहीं आता। ट्यूशन कर लो बेटा। नहीं मैं गणित नहीं समझ सकता। क्यों? मैं जानता हूं मैं नहीं समझ सकता। पढ़ो बेटा बिना पढ़े तो काम नहीं चल सकता। मैं गणित नहीं पढ़ सकता। पढ़ो! नहीं। पढ़ो! नहीं। पढ़ो! नहीं। पढ़ो! नहीं पढ़ो! नहीं नऽऽहींऽऽ...यह लो तुम्हारी गणित और यह लो.....

अमित नहीं रहा। अमित पूनिया ने आत्महत्या कर ली। वह 16 वर्ष का था। वह जीना चाहता था। उसे नहीं जीने दिया गया।

यह किसी नाटक का दृश्य नहीं, बल्कि हमारे इर्द-गिर्द आये दिन ऐसी घटनायें घटती हैं। हम अखबार पढ़ते हैं। थोड़ी देर के लिए ये हमें परेशान करती हैं और कुछ समय बाद भूल जाते हैं। इधर पिछले कुछ वर्षों में ये घटनाएं तेजी से बढ़ी हैं। परीक्षा-परिणाम आने पर, प्रवेश न मिलने पर, टीचर की या मां-बाप की डांट खाने पर कुछ इसी रूप में आत्महत्याओं की खबरें आती हैं। आखिर वे कौन से कारण हैं कि ये किशोर जिन्दगी से इतना निराश हो जाते हैं और आत्मघाती रास्ते पर आगे बढ़ जाते हैं।

वह कौन है जो इन किशोरों को-युवाओं को, जो जीना चाहते थे, आत्महत्या करने के लिए मजबूर कर रहा है। वह कौन है जिसने इनकी जिन्दगी के उजाले को छीन लिया? वह कौन है जिसने नई पीढ़ी के सपनों, कल्पनाओं, आकांक्षाओं को कैद कर लिया है और जो उनके तर्क और विवेक पर हर क्षण प्रहार कर रहा है। वह कौन है जो इनके जीने की ललक पर तुषारापात कर रहा है। आखिर वह हत्यारा कौन है जो हमारी संवेदनाओं को मार रहा है कि अमित पूनिया की आत्महत्या को हम महज एक खबर के रूप में पढ़ जाते हैं और भूल जाते हैं कि उस हत्यारे की शिनाख्त करना कितना जरूरी है। भूल जाते हैं कि वह हत्यारा हमारे घर के पिछवाड़े भी घात लगाये बैठा है।

अमित का गणित पढ़ने में मन नहीं लगता था। हो सकता है उसकी संगीत में रुचि हो। वह कविता लिखना चाहता हो। उसे दुनिया की सैर करना पसन्द हो। उसकी बागवानी में रुचि हो। क्यों पढ़े वह गणित? और कौन बच्चा है जो राजी खुशी स्कूल सिर्फ पढ़ने जाता है। हमारी स्कूली पढ़ाई ही ऐसी है, जिसमें हर विषय को इतना गूढ़, वायवीय, अपठनीय बना दिया जाता है। परीक्षा प्रणाली ऐसी है कि यदि आप परीक्षा में अव्वल स्थान नहीं प्राप्त करते तो आप नकारा हैं, कूड़ा हैं। शिक्षा को पूरी तरह से जीवन से काट रखा है। छात्र रोचक विषयों को भी तोते की तरह रटने के लिए अभिशप्त हैं।

किसी छात्र से पूछा जाये कि वह क्यों पढ़ना चाहता है तो उसका उत्तर होगा—एक अच्छी नौकरी के लिए, बड़ा आदमी बनने के लिए। बड़ा आदमी—यानी गाड़ी, बंगला और ढेर सारा पैसा। वह किशोर आपको बतायेगा कि यदि आपके पास पैसा है, तो जमाने में आपकी इज्जत है, आप जी सकते हैं, नहीं है तो कुछ भी नहीं। वह गुनगुनाता है 'दुनिया जाये भाड़ में, ऐश करो तुम'।

कहां से आ रही है यह सोच जो छात्रों को लालची, स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित, खुदगर्ज, संवेदनशून्य बना रही है।

हमारी शिक्षा व्यवस्था का लक्ष्य बेहतर इंसान तैयार करना नहीं है। शिक्षा व्यवस्था के केन्द्र में इंसान नहीं है। आम जनता के बच्चों के लिए जो शिक्षा व्यवस्था है उसका लक्ष्य है ऐसे यंत्र मानव तैयार करना जो मालिकों के स्वामिभक्त सेवक हों। शिक्षा व्यवस्था हमें क्लर्क बनाती है—मालिकों की खाता-बही दुरुस्त रखने को। हमें सेल्समैन बनाती है—मालिकों के कारखानों में बन रहे सामान को बेचने के लिए। हमें मास्टर बनाती है—सेवकों की अगली पीढ़ी तैयार करने के लिए। हमें कलमघसीट भी बनाती है—ताकि मालिकों के अखबारों मं हम ऐसी खबरें लिखें जो उनको भाये। हमें सिपाही, फौजी बनाती है—मालिकों की रक्षा के लिए। और बहुत कुछ बनाती है—क्योंकि मालिकों की लूट की मशीनरी को ढेर सारे कलपुर्जों की जरूरत होती है। मालिकों को अनपढ़ सेवकों की भी जरूरत होती है तो हमारे देश में "आजादी" के करीब 55 साल बाद भी 60 प्रतिशत से ऊपर जनता अशिक्षित है।

हमारे मालिक दून स्कूलों में पढ़ रहे हैं जहां से निकलकर वे उद्योगपति-नौकरशाह-जज-जेलर-अफसर-प्रोफेसर सब कुछ बनेंगे। हमारे मालिक इसलिए हमारे मालिक बनेंगे क्योंकि वे मालिकों के खानदान में पैदा हुए। कभी-कभी मालिकों के कुत्ते, हमारे बीच के गद्दार भी हमारे मालिक बन जाते हैं। मालिक ही हमारी शिक्षा व्यवस्था तय करते हैं। अपने वफादार सेवकों से कहते हैं कि लोकतांत्रिक ढंग से इसे लागू करो। और फिर नई-नई शिक्षा नीतियां बन जाती हैं। मालिक सेवकों से कहते हैं कि खूब मेहनत से सेवा करो, एक दिन तुम भी बड़े आदमी बन जाओगे। हम जिन्दगी भर मेहनत करते हैं 'कर्मण्येवा धिकारस्ते मा फलेषु कदाचनम' का जाप करते हुए। वे उन अपवादों को हमारे सामने नमूने के तौर पर पेश करते हैं जो हमारे बीच से हमारे कंधों पर चढ़कर उनके बगलगीर बन जाते हैं। उनके जैसा बन जाने की मृग-मरीचिका हमें कोल्हू का बैल बना देती है।

अमित कोल्हू का बैल नहीं बनना चाहता था। यह शिक्षा व्यवस्था उसे कोल्हू का बैल बनाने पर आमादा थी। अमित तनाव बर्दाश्त न कर सका। अमित अपने में सिमटा रहा। वह यह जान न सका कि उसके साथी भी इसी तरह घुट रहे हैं। उसकी इच्छाओं का गला घोंटा गया था। वह यह नहीं जान सका कि हमारी इच्छाओं को मालिकों ने कैद कर रखा है। काश! अमित यह जानता होता कि अपनी बेचैनी को साझा कर हम इस शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ लड़ सकते हैं और लड़ते हुए गणित तो क्या जिन्दगी के हर पहलू को समझ सकते हैं। वह अकेला अपनी लड़ाई लड़ता रहा और आखिरकार थक गया। और उसकी हत्या हो गयी। काश अमित समझ पाता कि

"मरने का एक और भी सलीका होता है
भरे ट्रैफिक के बीचों-बीच लेट जाना
और जाम कर देना
वक्त का बोझिल पहिया।" (पाश)

इंकलाब के लिए जरूरी है एक इंकलाबी पार्टी
और इंकलाबी पार्टी के लिए जरूरी है एक इंकलाबी अखबार
नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ**
email : bigulakhbar@hotmail.com
मूल्य : तीन रुपए, वार्षिक : 36 रुपए (डाकव्यय सहित 40/-)

आह्वान यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश ■ जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ■ विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ■ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, **गोरखपुर** ■ जनचेतना स्टाल, कॉफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ** (शाम 5 से 8.30 तक) ■ ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ■ राहुल फाउण्डेशन, 3/274 विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, **लखनऊ** ■ विमल कुमार, बुक स्टाल, नीलगिरि काम्प्लेक्स के सामने, इंदिरानगर, **लखनऊ** ■ कृष्णगोविन्द सिंह, एस.एच. 1/49, ए-24, प्रथम तल, जयनगर कालोनी, गिलट बाजार, **वाराणसी** ■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी.एच.यू. परिसर, **वाराणसी** ■ शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, **मऊ** ■ राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद्र**

उत्तरांचल ■ रविन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, **पन्तनगर** (ऊधमसिंहनगर) ■ अविनाश श्रीवास्तव, 87, पन्त भवन, **पन्तनगर विश्वविद्यालय, ऊधमसिंहनगर** ■ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ■ प्रो. प्यारेलाल, 139, फूलबाग कालोनी, **पन्तनगर**

दिल्ली ■ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-फेज एक, **दिल्ली-91** ■ अभिनव सिन्हा, बी.ए.ऑनर्स-III (इतिहास), रामजस कालेज, दिल्ली वि.वि. ■ गीता बुक सेंटर, **जे.एन.यू.** ■ बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, **मंडी हाउस** ■ पुस्तक मंडप, कला संकाय, **दिल्ली विश्वविद्यालय** ■ नई किरण पुस्तक भण्डार, 56, हरकेश नगर, **ओखला, दिल्ली**

हरियाणा ■ नरभिंडर सिंह, शहीद भगतसिंह विचार मंच, हरियाणा, ग्रा./पो.**संतनगर**, जिला **सिरसा** ■ पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर 15, सोनीपत

बिहार ■ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ■ समकालीन प्रकाशन (प्रा. लि.), पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना**

बंगाल ■ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ■ जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. **जलपाईगुड़ी** ■ सी.पी. सरोज, सनराइज स्कूल, छोटा अदलपुर, सेमलबाड़ी, **दार्जीलिंग** ■ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर, प्रधाननगर, **सिलीगुड़ी**

मध्य प्रदेश ■ चिंचोलकर बुक हाउस बस स्टैण्ड, जगदलपुर, बस्तर ■ विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22 स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसेल चौक, जबलपुर

महाराष्ट्र ■ पीपुल्स बुक हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई**

राजस्थान ■ कविता, द्वारा योगेश कुमार, 94, मोहननगर (त्रिवेणीनगर), गोपालपुरा बाईपास, **जयपुर**

असम ■ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, **तिनसुकिया**

नेपाल ■ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवण पथ, बुटवल, **रुपनदेई**

भगतसिंह के सपनों से किया गया वादा कब पूरा होगा?

अस्सी साल गुजर चुके हैं जब 23 मार्च 1931 को शहीदेआज़म भगत सिंह ने राजगुरु और सुखदेव के साथ फांसी का फंदा चूमा था। 'हवा में रहेगी मेरे खयाल की बिजली, ये मुश्ते-ख़ाक है फ़ानी रहे, रहे ना रहे'—भगतसिंह की इस उद्घोषणा को सही साबित करते हुए आज भी उनके विचार जिन्दा हैं, सपने जिन्दा हैं। हालांकि 1947 के बाद भी देशी हुक्मरानों ने इन्हें दफन करने की कोशिशों में कुछ भी उठा नहीं रखा।

लेकिन इन सपनों के साथ देश की युवा पीढ़ी ने भी एक वादा किया था—इन्हें यथार्थ में तब्दील करने का! 1947 के बाद लगभग दो पीढ़ियां आज युवा से प्रौढ़ हो चुकी हैं, और तीसरी पीढ़ी युवापन की दहलीज पर खड़ी है, पर यह वादा अभी पूरा नहीं हुआ। आज हम दो सदियों के सन्धि-बिन्दु पर खड़े हैं, और यह सवाल आज भी हमारे दिलो-दिमाग पर दस्तक दे रहा है—क्या युवा यह वादा पूरा करेंगे? और जब तक ये पूरे नहीं होंगे ये सवाल उन सभी सच्चे युवाओं को बेचैन करता रहेगा जिनके दिलों में भगतसिंह के सपने कभी मरे नहीं। हम यहां भारतीय जनता के उस महान सपूत के लेखों-भाषणों-बयानों से कुछ अंश दे रहे हैं, जिससे अगर सपने गुम हो रहे हों तो एक बार फिर याद आ जायें, और हम यह ठीक से समझ सकें कि "एक सपने को टालते रहने से क्या होता है?"

—सम्पादक

क्रान्ति

क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका सिपर्फ एक ही अर्थ हो सकता है— जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रान्ति', बाकी सभी विद्रोह तो सिर्फ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूंजीवादी सड़ांध को ही आगे बढ़ाते हैं। किसी भी हद तक लोगों से या उनके उद्देश्यों से जतायी हमदर्दी जनता से वास्तविकता नहीं छिपा सकती, लोग छल को पहचानते हैं। भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को —भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगार हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें शोषण पर आधारित हैं—आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते। बुराइयां, एक स्वार्थी समूह की तरह, एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए तैयार हैं।

साम्राज्यवादियों को गद्दी से उतारने के लिए भारत का एकमात्र हथियार श्रमिक क्रान्ति है। कोई और चीज इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती। सभी विचारों वाले राष्ट्रवादी एक उद्देश्य पर सहमत हैं कि साम्राज्यवादियों से आजादी हासिल हो। पर उन्हें यह समझने की भी जरूरत है कि उनके आन्दोलन की चालक शक्ति विद्रोही जनता है और उसकी जुझारू कार्रवाईयों से ही सपफलता हासिल होगी। चूंकि इसका सरल समाधान नहीं हो सकता, इसलिए स्वयं को छलकर वे उस ओर लपकते हैं, जिसे वे आरजी इलाज, लेकिन झटपट और प्रभावशाली मानते हैं—अर्थात् चन्द सैकड़े दृढ़ आदर्शवादी राष्ट्रवादियों के सशस्त्र विद्रोह के जरिए विदेशी शासन को पलटकर राज्य का समाजवादी रास्ते पर पुनर्गठन। उन्हें समय की वास्तविकता में झांककर देखना चाहिए। हथियार बड़ी संख्या में प्राप्त नहीं हैं और जुझारू जनता से अलग होकर अशिक्षित गुट की बगावत की सफलता की इस युग में कोई सम्भावना नहीं है। राष्ट्रवादियों की सफलता के लिए उनकी पूरी कौम को हरकत में आना चाहिए और बगावत के लिए खड़ा होना चाहिए। और कौम कांग्रेस के लाउडस्पीकर नहीं है, वरन् वे मजदूर-किसान हैं, जो भारत की 95 प्रतिशत जनसंख्या है। राष्ट्र स्वयं को राष्ट्रवाद के विश्वास पर ही हरकत में लायेगा, यानी साम्राज्यवाद और पूंजीपति की गुलामी से मुक्ति का विश्वास दिलाने से।

हमें याद रखना चाहिए कि श्रमिक क्रान्ति के अतिरिक्त न किसी और क्रान्ति की इच्छा करनी चाहिए और न ही वह सफल हो सकती है।

(क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा, 1931)

विद्यार्थियों के नाम पत्र

इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठायें। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी महत्वपूर्ण काम है। ....राष्ट्रीय इतिहास के इन कठिन क्षणों में नौजवानों के कंधों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ेगी। यह सच है कि स्वतंत्रता के इस युद्ध में अग्रिम मोर्चों पर विद्यार्थियों ने मौत से टक्कर ली है। क्या परीक्षा की इस घड़ी में वे उसी प्रकार की दृढ़ता और आत्मविश्वास का परिचय देने से हिचकिचायेंगे?

नौजवानों को क्रान्ति का यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुंचाना है, फैक्टरी-कारखानों के क्षेत्रों में, गंदी बस्तियों और गांवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख

जगानी है जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।

(भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त की ओर से जेल से भेजा गया यह पत्र 19 अक्टूबर, 1929 को पंजाब छात्र संघ, लाहौर के दूसरे अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया था।)

यह युद्ध पूंजीवाद के खिलाफ है ...

... हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूंजीपति, अंग्रेज शासक या सर्वथा भारतीय ही हों। उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूंजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के कुछ मुखियाओं पर प्रभाव जमाने में सफल हो जायें, कुछ सुविधायें मिल जायें या समझौते हो जायें, उससे भी स्थिति नहीं बदल सकती। जनता पर इन सब बातों का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

इस बात की भी हमें चिन्ता नहीं है कि एक बार फिर युवकों को धोखा दिया गया है और इस बात का भी भय नहीं है कि हमारे राजनीतिक नेता पथभ्रष्ट हो गये हैं और वे समझौते की बातचीत में इन निरपराध, बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गये हैं जिन्हें क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनीतिक नेता उन्हें अपना शत्रु समझते हैं, क्योंकि उनके विचार से वे हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरांगनाओं ने अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने बलिवेदी पर अपने पतियों को भेंट किया, उन्होंने अपनेआप को न्यौछावर कर दिया, परन्तु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेन्ट भले ही झूठी कहानियां गढ़कर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की ख्याति को हानि पहुंचाने का प्रयास करें किन्तु यह युद्ध चलता रहेगा। हो सकता है कि यह युद्ध भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। कभी यह युद्ध प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दशा में चलता रहे, कभी भयानक रूप धारण कर ले, कभी किसान के स्तर पर जारी रहे और कभी यह युद्ध इतना भयानक हो जाय कि जीवन और मरण की बाजी लग जाय। चाहे कोई भी परिस्थिति हो, इसका प्रभाव आप पर पड़ेगा।

यह आपकी इच्छा है कि आप जिस परिस्थिति को चाहें चुन लें, परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। बहुत सम्भव है कि यह युद्ध भयानक स्वरूप धारण कर ले। यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि समाज का वर्तमान ढांचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक व्यवस्था में परिवर्तन या क्रान्ति नहीं हो जाती और सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

निकट भविष्य में यह युद्ध अन्तिम रूप में लड़ा जायेगा और तब यह निर्णायक युद्ध होगा। साम्राज्यवाद एवं पूंजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं। यही वह युद्ध है जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप में भाग लिया है। हम इसके लिये अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ ही किया है, न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा। हमारी सेवायें इतिहास के उस अध्याय के लिये मानी जायेंगी, जिसे यतीन्द्रनाथ दास और भगवतीचरण के बलिदानों ने विशेष रूप से प्रकाशमान कर दिया है। इनके बलिदान महान हैं।

(फांसी से तीन दिन पूर्व भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव द्वारा फांसी के बजाय गोली से उड़ाये जाने की मांग करते हुए पंजाब के गवर्नर को लिखे गये पत्र का एक अंश)

विचारों को कुचला नहीं जा सकता

जनता के प्रतिनिधियों से आग्रह है कि वे इस पार्लियामेंट के पाखण्ड को छोड़कर अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्रों में लौट जाएं और जनता को विदेशी दमन और शोषण के विरु(क्रान्ति के लिए तैयार करें। हम विदेशी सरकार को यह बता देना चाहते हैं कि हम देश की जनता की ओर से सार्वजनिक सुरक्षा कानून और औद्योगिक विवाद कानून जैसे दमनकारी कानूनों और लाला लाजपत राय की हत्या के विरोध में यह कदम उठा रहे हैं। हम जनता का ध्यान इतिहास में बराबर दोहराये गये इस सबक की ओर दिलाना चाहते हैं कि गुलामी और बेबसी से कराहती जनता को कुचलना आसान है, परन्तु विचार अमर होते हैं और दुनिया की कोई ताकत उन्हें कुचल नहीं सकती। दुनिया में अनेक बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गये, परन्तु जनसाधारण ने जिन विचारों से प्रेरित होकर इन्हें समाप्त किया वे आज भी जीवित हैं। बूरबों ;फ्रांसीसी राजवंश-सं.द्ध मिट गये, पर क्रांतिकारी सीना ताने चल रहे हैं।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्जवल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का अवसर मिल सके। हम मानव रक्त बहाने की अपनी विवशता के लिए दुखी हैं, परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतंत्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति के अवसर पर कुछ न कुछ रक्तपात अनिवार्य है। इन्कलाब जिन्दाबाद!

(केन्द्रीय असेम्बली में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा बम विस्फोट के बाद फेंके पर्चे से)

"जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है तो किसी भी प्रकार की तब्दीली से वे हिचकिचाते हैं। इस जड़ता और निष्क्रियता को तोड़ने के लिए एक क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की जरूरत होती है, अन्यथा पतन और बर्बादी का वातावरण छा जाता है। लोगों को गुमराह करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियां जनता को गलत रास्ते पर ले जाने में सफल हो जाती हैं। इससे इंसान की प्रगति रुक जाती है और उसमें गतिरोध आ जाता है। इस परिस्थिति को बदलने के लिए यह जरूरी है कि क्रान्ति की स्पिरिट ताजा की जाए, ताकि इंसानियत की रूह में हरकत पैदा हो।"

('माडर्न रिव्यू' के सम्पादक के नाम पत्र से)

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम 'आह्वान' टीम के साथियों और अन्य संवेदनशील-चिन्तनशील युवाओं द्वारा प्रस्तुत उन विचारपरक लेखों-टिप्पणियों को प्रकाशित करेंगे जिनमें समाज के किसी ज्वलन्त प्रश्न, किसी राजनीतिक-सामाजिक घटना-परिघटना या किन्हीं प्रातिनिधिक सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों-प्रवृत्तियों का दार्शनिक धरातल पर विवेचन किया गया हो। मौजूदा संक्रमणकालीन समय में नयी पीढ़ी के संवेदनशील तत्वों के मानसिक-भावात्मक जगत में एक बेचैन कर देने वाली उथल-पुथल का मौजूद रहना नितान्त स्वाभाविक है। इसी उथल-पुथल के बीच से निकलकर भविष्य को सिरजने वाले विचार व्यापक युवा आबादी के बीच भी पुष्पित-पल्लवित होते हैं जो कालान्तर में एक परिवर्तनकामी भौतिक शक्ति का रूप धारण कर लेते हैं। हमें उम्मीद है कि इस स्तम्भ के जरिये 'आह्वान' के पाठक एक सामूहिक चिन्तन-प्रक्रिया के जीवन्त साझीदार बन सकेंगे। –सम्पादक

"मैं हूं अपनी मर्जी का मालिक"– "क्या वाकई?"

अभिनव

तरह-तरह की स्पोर्ट्स कारों के नये-नये मॉडलों और 100 सी.सी मोटरसाइकिलों के ताजातरीन मॉडलों पर सवार, सड़कों पर फर्राटा भरते ऐसे बहुतेरे नौजवान अक्सर ही आपको दिख जाते होंगे जिनकी एक-एक भावभंगिमा, स्टाइल-अन्दाज से यह फूट रहा होता है–"मैं चाहे ये करूं, मैं चाहे वो करूं ... मेरी मर्जी!" उनका समूचा परिवेश बोलता है, चीखता है–मेरी मर्जी! उनकी संस्कृति चीखती है–मेरी मर्जी! उन्हीं के अक्स दूरदर्शन-सिनेमा के पर्दों पर चीखते-चिल्लाते हैं–मेरी मर्जी! एफ.एम. चैनलों से बजने वाले गीतों से भी यही चीख उभरती है–मेरी मर्जी! ऐसे में बरबस ही यह सवाल उठता है–"क्या वाकई"?

मन में यह सवाल भी सहज ही उठता है कि क्या ट्यूशन पढ़ाकर या दिन में कोई पार्ट टाइम काम करके अपनी पढ़ाई का खर्चा उठाने वाले नौजवान, वे नौजवान जिनके पिता सरकारी नौकरी से रिटायर हो चुके हैं और पी.एफ. में इतना पैसा नहीं जुटा पाये कि बेटी के ब्याह के लिए दहेज पूरा हो सके, या वे नौजवान जिनके मां-बाप दूर-दराज के किसी गांव में छोटी-मंझोली किसानी करते हुए, अपना पेट काटकर, कर्ज लेकर बेटे को पढ़ाई का पैसा किसी तरह भेजते हैं – क्या वे भी इतने ही अलमस्त-बेफ्रिक-स्वच्छन्द ढंग से हल्ला मचा सकते हैं–"मेरी मर्जी" या फिर –"हम लोगों की ठोकर में हैं ये जमाना"। हो सकता है कि कुछ समय के लिए ये नौजवान भी इस फैंटेसी के शिकार हो जायें पर यह कुण्ठित फैंटेसी ही होगी। हालात के थपेड़े उन्हें या तो इस कुण्ठित फैंटेसी से खुरदुरी जमीन पर ला पटकते हैं या यह फैंटेसी उन्हें रुग्ण मानसिकता वाला या अवसाद का मरीज बना देती है।

बहरहाल, जो लोग अपनी मर्जी के मालिक होने का दम भरते हैं उन्हें यह पता भी नहीं होता कि न जाने कितने स्वप्नों की कब्र पर उनके सपनों के फूल खिलते हैं। वे दरअसल ऐसा सोच ही इसलिए पाते हैं क्योंकि लूट पर टिकी व्यवस्था में बहुसंख्यक मेहनतकश जनता के दुर्भाग्य के समन्दर में उनकी "कामयाबियों" के टापू उठ खड़े हुए हैं। वस्तुतः यह उनकी मर्जी भी नहीं होती, उसका मिथ्याभास होता है। असली मर्जी तो पूंजी की होती है। दरअसल, स्वयं पूंजीपति भी पूंजी की मर्जी का गुलाम होता है। जब एक बार वह इसके चक्रव्यूह में फंस जाता है तो पूंजी उसे नचाती है। पूंजी एक ऐसी सवारी है जो उलटकर सवार को ही सवारी बना डालती है। यह अलग से एक चर्चा का विषय है। हम यहां पर इस चर्चा के विस्तार में न जाकर व्यक्तिगत आजादी की जो पूंजीवादी सोच है उसके गम्भीर विश्लेषण पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

यूं कभी-कभी चीजें सामान्य तर्कबोध से भी समझ में आ जाती हैं। लेकिन हमें उनका गम्भीर विश्लेषण कर उनकी जड़ों तक पहुंचना चाहिये तभी हम अवचेतन में बैठे हुए संस्कारों से मुक्त हो सकेंगे। निजी आजादी की पूंजीवादी सोच एक मिथ्याभास है। यह तो मीडिया और पूंजीवादी शिक्षा व्यवस्था है जो आम नौजवानों के दिलोदिमाग को इस सोच से दूषित करती रहती है। इसके साथ ही, पूंजीवादी समाज की स्वतंत्र गति और उसके आर्थिक नियम भी स्वतःस्फूर्त ढंग से व्यक्ति को व्यापक जनसमष्टि से काटकर अलगाव की मानसिकता और निजी स्वच्छन्दता का यूटोपिया रचते रहते हैं। पूंजीवादी समाज में बात यहां तक जा पहुंचती है कि किसी भी प्रकार की सामाजिकता और सामाजिक दायित्व ही आज एक मध्यवर्गीय युवा को निजी स्वतंत्रता पर बन्धन लगने लगती है। इस प्रश्न पर इस कोण से भी विचार किया जाना चाहिये कि पूंजीवादी सामाजिक अलगाव कितने रूपों में व्यक्ति को समाज-निषेधी, समूह-निषेधी बनाता जा रहा है और किस तरह हर प्रकार के सामाजिक दायित्व से मुक्त निठल्लेपन और उद्धत निरंकुशता को ही निजी आजादी मान बैठने की सोच पैदा होती है।

हम यहां इस नजरिये से इस प्रश्न पर

विचार करेंगे कि सामाजिक मुक्ति को निजी मुक्ति से जोड़ने वाले विचारकों ने किस रूप में व्यक्तिगत आजादी के प्रश्न पर विचार किया है और उनके विपरीत ध्रुव पर खड़े विचारकों के जो तर्क रहे हैं उनका उन्होंने किस रूप में खण्डन किया है। स्वतंत्रता और आवश्यकता के अन्तर्सम्बन्धों के सम्बन्ध में भी हम यहां आजादी की पूंजीवादी अवधारणा की एक समालोचना प्रस्तुत करेंगे।

आजादी की पूंजीवादी अवधारणा की समालोचना

दर्शन, समाज विज्ञान, और मानविकी के क्षेत्र में मुक्ति का प्रश्न हमेशा से ही विचार-विमर्श का आधारभूत विषय रहा है। ज्यादा समय नहीं बीता है जब बुर्जुआ बुद्धिजीवी इस विषय पर अपनी भ्रामक और स्वयं भ्रमग्रस्त धारणाओं को विभिन्न माध्यमों से आम लोगों तक पहुंचाने में लगे हुए थे। भ्रमित तो वे आज भी हैं, और पहले से भी ज्यादा बुरी तरह से, लेकिन अपनी इन धारणाओं को अब वे और परिष्कृत रूप में, और अधिक कुशलता के साथ लोगों के दिमाग में भर रहे हैं।

आज की विकृत और मानवद्रोही पूंजीवादी संस्कृति की नैया के खेवैया इस भ्रम के शिकार हैं कि **आदमी पैदा तो मुक्त ही हुआ था, लेकिन उसने स्वयं को समाज के बन्धनों में जकड़ लिया;** कि सबसे मुक्त मनुष्य वह है जो सबसे कटा हुआ है; कि 'स्वाभाविक मनुष्य' के मुक्ति पाने के लिए सबसे जरूरी है—समाज के साथ उसके सारे बन्धनों की समाप्ति; और यह कि मानव समुदाय को फिर से उसके संघटक तत्वों में विघटित कर देना ही मानव-मुक्ति की सबसे पहली शर्त है। मुक्ति की पूंजीवादी अवधारणा का केन्द्रीय तत्व यही है। यह पूंजीवादी संस्कृति के प्रमुखतम संघटक वैचारिक आधारों में से एक है।

हम इतिहास के एक महत्वपूर्ण दौर में जी रहे हैं। पूंजीवादी आर्थिक-सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था को जहां पहुंचना था, वहां वह पहुंच चुकी है। मानव समाज को कोई भी सकारात्मक योगदान देने की क्षमता पूंजीवाद खो चुका है और "आदर्श" या प्रतिदर्श पूंजीवादी समाज अकल्पनीय सांस्कृतिक विकृतियों के शिकार हैं। बुर्जुआ संस्कृति अपने विकास के दौर में तमाम वैज्ञानिक, कलात्मक, साहित्यिक, तार्किक उपलब्धियां हासिल करने के बावजूद आज खाली हाथ है। इसके मूल कारण को हम पूंजीवाद की सहज अराजक गति और अव्यवस्था के तर्क से समझ सकते हैं। असमान, अराजक और सामाजिक दृष्टि से अनुत्पादक विकास पूंजीवाद के बुनियादी अन्तरविरोधों को लगातार गहरा बनाता जा रहा है। हर उपलब्धि मिडास के स्पर्श* के समान है, जो स्वयं पूंजीवाद को ही अनुपयोगी जड़-पिण्ड में बदली जा रही है।

मुक्ति के बारे में पूंजीवादी सोच पूंजीवादी संस्कृति में विकृतियों का एक बुनियादी कारक रही है। बुर्जुआ संस्कृति की विडम्बना यह है कि वह अपने उद्भव से लेकर आज तक एक ही प्रक्रिया से चिपकी हुई है। जिन तर्कों का उपयोग उसने सामंतवाद से लड़ने के लिए किया था, उन्हें वह आज की समस्याओं को हल करने के लिए भी निरूपित कर रही है।

मुक्ति का पूंजीवादी दृष्टिकोण एक प्रतिक्रियावादी सोच है। यह मनुष्य को फिर से जंगल में भेजना चाहता है। वह कहता है कि, आदमी कुदरती तौर पर आजाद पैदा हुआ था लेकिन समाज के बन्धनों ने उसे और उसके विचारों को पंगु बना दिया। यानी एक तरह से यह दृष्टिकोण यह प्रतिपादित करता है कि सबसे आजाद जंगली पशु हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में तब होता है जब वह स्वच्छन्दता से अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर रहा होता है। लेकिन क्या मनुष्य की इच्छायें हवा में पैदा होती हैं? क्या वे निरपेक्ष होती हैं? क्या उन पर किसी भी चीज का प्रभाव नहीं पड़ता? क्या वे इच्छायें कभी गलत और अनैतिक नहीं हो सकतीं? यदि किसी मनुष्य की इच्छापूर्ति किसी अन्य मनुष्य की इच्छापूर्ति का अधिकार छीने, क्या तब भी उसका स्वच्छन्दता से इच्छापूर्ति करना उचित है? ये कुछ स्वाभाविक सवाल है जिन पर 'निरपेक्ष स्वतंत्रता' के पुजारियों को सोचना चाहिये।

मुक्ति विषयक यह वैचारिक भ्रम शुरू से ही इसी रूप में और भूमिका में नहीं रहा है जिसमें यह आज है। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है, यह अवधारणा सामन्तवाद और चर्च की बेड़ियों से मनुष्य की मुक्ति के पक्ष में अस्तित्व में आई थी। वह यूरोप में पुनर्जागरण और प्रबोधन का दौर था। लोग चर्च और सामन्तवाद के तले दबे थे। वैयक्तिक अधिकारों का और जनवादी अधिकारों का कोई स्थान न था। तब व्यक्ति सामंती स्वेच्छाचारिता के खिलाफ खड़ा था। पूंजीवाद का सामन्तवाद-विरोधी, रूढ़िवाद-विरोधी, स्वेच्छाचार-विरोधी, पुनर्जागरण-कालीन घोषणापत्र यह घोषणा करता है कि **प्रत्येक मनुष्य द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक अपनी इच्छापूर्ति से समूचे समाज का भला होगा।** सामन्ती परिस्थितियों में यह सोच काल-विशेष के लिए क्रान्तिकारी भूमिका में थी। नतीजतन पूंजीवाद मुख्य शक्ति बनकर उभरा। पूंजीपति वर्ग ने इस मुक्ति की अवधारणा को अन्तिम और दिव्य सत्य के रूप में प्रचारित किया। सामन्तवाद द्वारा कुचली गयी जनता के लिए ये विचार क्रान्तिकारी थे। एक भूदास के लिये या एक किसान के लिए, जो दरअसल एक अर्द्धभूदास ही था, ये विचार मुक्तिकर्ता ही थे। इन्हीं विचारों से किसानों को सामन्ती बेड़ियों से मुक्ति भी मिली; यह बात दीगर है कि इसके बाद उसे पूंजी और बाजार का गुलाम हो जाना था। अब, जबकि पूंजीवादी व्यवस्था का पहिया चरमरा रहा है, मनुष्य सामन्तवाद के अपेक्षतया कमजोर बन्धनों से मुक्त होकर माल की अप्रत्यक्ष, अतिशक्तिशाली सत्ता के अधीन हो गया है, मुक्ति की वही पुरानी पुनर्जागरण-कालीन अवधारणा अब अप्रासंगिक हो चली है। पूंजीवादी समाज में पूंजी स्वतंत्र होती है और उसकी अपनी वैयक्तिकता होती है, जबकि जिन्दा आदमी निर्भर होता है और उसकी कोई वैयक्तिकता नहीं होती है।

---

*मिडास का स्पर्श : राजा मिडास को यह वरदान था कि वह जिस चीज को छुएगा वह सोने की हो जायेगी।

कार्ल मार्क्स के शब्दों में,

"उत्पादन की मौजूदा बुर्जुआ व्यवस्था के अन्तर्गत, स्वतंत्रता का मतलब है मुक्त व्यापार, मुक्त क्रय और विक्रय।"

पूंजीवाद में मनुष्य पूंजीवाद की परिस्थितियों का गुलाम होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा पूरी करना चाहता है। ऐसे में, जाहिरा तौर पर विभिन्न व्यक्तियों की इच्छाएं आपस में टकराती हैं। माल मनुष्य का भाग्य निर्धारित करने लगते हैं। मनुष्य का ही उत्पादन उसके अस्तित्व से कटकर उसका मालिक बन बैठता है। माल को अपने भविष्य-निर्धारक के रूप में देखने के कारण मनुष्य उसकी देवताओं के समान पूजा करने लगा। मुद्रा भी, जो एक सार्वभौमिक माल ही है, पूजी जानें लगी। इस तरह माल अन्धभक्ति (Commodity Fetishism) अस्तित्व में आई।

इसके बाद मनुष्य अपने अन्य मनुष्यों के साथ सम्बन्ध को मानव सम्बन्ध की जगह माल-सम्बन्ध के रूप में देखने लगे। यही दृष्टिकोण आज के दौर में अलगाववादी और स्वत्वात्मक नजरिये के हावी होने की बुनियादी वजह है।

पूंजीवादी मुक्ति की यह सोच स्वच्छन्दता की पक्षधर है। यह मानती है कि आदमी को बिना किसी के दुख-सुख की परवाह किये अपनी मनमानी करनी चाहिये। लेकिन आज यह सम्भव ही नहीं है। न ही यह व्यावहारिक है। पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत यह हो ही नहीं सकता कि मनुष्य स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी इच्छा पूरी करे। यदि यह सपना सच हो जाता औरआदमी 'कुदरती' तौर पर आजाद हो जाता तो कितना अच्छा होता! लेकिन वास्तविकता कुछ और ही है, जिसे सुनकर पूंजीवादी चिंतक या तो गुस्से में लाल हो जाते हैं या दुखी हो अवसादग्रस्त हो जाते हैं। ऊपरी तौर पर सच यह नजर आता है कि आज स्वतंत्र वह है जिसके पास पूंजी है। लेकिन थोड़ी गहराई में जाते ही यह पता चल जाता है कि यह भी सच नहीं मिथ्याभास है। दरअसल वह भी स्वतंत्र नहीं है। 'मुक्त' मनुष्य, वस्तुतः दीपक लेकर ढूंढ़ने से भी नहीं मिलेगा। **मुक्ति नैसर्गिक इच्छाओं की पूर्ति में ही नहीं बल्कि सामाजिक सम्बन्धों में भी निहित है। स्वतंत्रता निरपेक्ष नहीं होती, बल्कि यह मनुष्य से मनुष्य के सम्बन्धों पर ही टिकी है।** आदमी भले ही अपने मानवीय सम्बन्धों से मुंह फेर ले या उन्हें माल-सम्बन्धों का चोगा पहना दे, वह कभी भी उनसे अलग नहीं हो सकता, मनुष्य बने रहते हुए तो कदापि नहीं। उसके मानवीय सम्बन्ध माल-सम्बन्ध या बाजार से सम्बन्ध के भेस में होने के कारण स्वत्वात्मक प्रतीत हो सकते हैं।

प्रसिद्ध आलोचक **क्रिस्टोफर कॉडवेल** ने लिखा है —*"वह माल नगद और पूंजी प्राप्त करता है। उसके सामाजिक सम्बन्ध वस्तुओं से सम्बन्ध प्रतीत होते हैं, और चूंकि मनुष्य वस्तु से श्रेष्ठतर है, वह अब आजाद है, वही अब हावी है। लेकिन यह एक भ्रम है। समाज द्वारा निर्मित मानवीय सम्बन्धों से, जो कि समाज का प्राण और उसकी मूल-वस्तु हैं, मुंह मोड़कर मनुष्य उन शक्तियों का गुलाम हो गया है, जिनका नियंत्रण अब उससे परे है, क्योंकि उसने उनका मूल अस्तित्व नहीं स्वीकारा। वह पूंजी की गति, बाजार और तेजी-मंदी की दया पर है। वह अपने को ही भ्रम में रखे हुए है।"*

आगे वह लिखते हैं कि किस प्रकार पूंजीवादी स्वतंत्रता लोगों को मुक्त करने के बजाय भाग्य का दास बना रही है। "युद्ध, मन्दी, बेरोजगारी, निराशा और विक्षिप्तता के रूप में अन्धी तकदीर "मुक्त बुर्जुआ" और उसके "मुक्त पिछलग्गुओं" पर टूट पड़ रही है।"

बुर्जुआ मुक्ति की सोच आज अगणित विकृतियों को जन्म दे रही है, जैसे अलगाव, रुग्ण व्यक्तिवाद, अवसाद (Depression) पागलपन, आदि।

पूंजीवादी आदर्शवादी सोच कहती है कि सत्य मुक्ति को जन्म देता है। लेकिन यह मानने को वह तैयार नहीं कि सत्य-प्राप्ति इतनी सहज नहीं कि एक व्यक्ति अकेले उसको हासिल कर ले। सत्य-प्राप्ति में तो कई पीढ़ियों का सामाजिक श्रम लगा होता है। उसका तर्क है कि एक व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा अन्तिम यथार्थ (सत्य!) पा सकता है। यह तर्क एक ऐसे व्यक्ति का अहं प्रेरित रुदन का है जो पराजित है, जो यथार्थ प्राप्ति के मार्ग से डिग चुका है। यह वैसा ही हास्यास्पद है जैसे कि किसी का यह कहना कि वह अपने जीवन काल में ही भौतिकी का समूचा ज्ञान हासिल कर लेगा। यथार्थ एक अति-जटिल उपादान है और लगातार अधिक से अधिक जटिल होता जायेगा। इसे कई पीढ़ियों के सामाजिक प्रयास से ही समझने की कोशिश की जा सकती है।

लेकिन बुर्जुआ व्यक्तिवाद इस सीमा से तिलमिला जाता है और सारे सत्यों की उपेक्षा करते हुए कहता है कि एक अकेला दिमाग सब कुछ कर सकता है। यह भोंडी सोच उसी दर्शन से उपजी है जो कहता है कि पहले चेतना है न कि अस्तित्व। कॉडवेल के अनुसार *"चेतना क्रियाशीलता को निर्देशित करती है लेकिन निर्देशित कैसे करें, यह क्रियाशीलता से ही सीखती है। व्यक्ति निश्चित रूप में, ऐतिहासिक तौर पर, और हमेशा ज्ञान से आगे चलता है, क्योंकि ज्ञान की उत्पत्ति व्यक्ति के अस्तित्व का ही विस्तार है।"*

मनुष्य की प्रगति कुंडलाकार गति में होती है। दरअसल यह विकास होता है *अचेतनता से सचेतनता की सघनता की ओर।* भावनाएं और नैसर्गिकता सचेतनता की ओर गति की मुख्य उत्प्रेरक तत्व होती हैं। मनुष्य सचेतनता को लगातार सघन बनाता जाता है। लेकिन अगर परिवर्तनकारी शक्ति की बात होगी तो यह चेतना उसका सिर्फ एक हिस्सा है। हर मनुष्य की चेतना मुख्यत : भौतिक परिस्थितियां तैयार करती हैं। इसलिए सचेतन मनुष्य की भूमिका द्वितीयक, अनियमित और सीमित है। मनुष्य जैसे-जैसे अधिक सचेतन होता जाता है वह मुक्त होता जाता है। मनुष्य के सचेतन होने का अर्थ मुख्य रूप से उसका आवश्यकता के प्रति सचेतन होना है। आम तौर पर पूंजीवादी बुद्धिजीवी स्वतंत्रता और आवश्यकता के सम्बन्ध को नकारते हैं। लेकिन स्वतंत्रता पर कोई भी विमर्श तभी पूरा हो सकता है जब आवश्यकता के साथ उसके सम्बन्ध को समझा जाये। स्वतंत्रता बहुत घनिष्ठता के साथ आवश्यकता से जुड़ी हुई है। वस्तुगत आवश्यकता प्राथमिक होती है जबकि मनुष्य की चेतना द्वितीयक होती है। आवश्यकता वस्तुगत नियमों के रूप में समाज और प्रकृति में अस्तित्वमान होती है। जो परिघटनाएं समझ से बाहर होती हैं वे "अंधी" आवश्यकता के रूप में प्रकट होती हैं। आदिम मनुष्य तमाम प्राकृतिक नियमों को नहीं समझ सकता था, इसलिए वह

(पृष्ठ 17 पर जारी)

जन्मदिवस (25 दिसम्बर) के अवसर पर

नौजवानों के बारे में कुछ विचार

माओ त्से-तुङ

(चीनी क्रान्ति के महान नेता)

यह दुनिया तुम्हारी है, यह हमारी भी है, लेकिन अन्ततोगत्वा यह तुम्हारी ही होगी। तुम नौजवान लोग ओजस्विता और जीवन-शक्ति से भरपूर, सुबह 8 या 9 बजे के सूरज की तरह अपनी जिन्दगी की पुरबहार मंजिल में हो। हमारी आशाएं तुम पर लगी हुई हैं।...

यह दुनिया तुम्हारे ही हाथों में है। चीन का भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है।

मास्को में चीनी विद्यार्थियों और प्रशिक्षार्थियों के साथ मुलाकात के दौरान बातचीत (17 नवम्बर 1957)

नौजवान लोग समाज की सबसे अधिक सक्रिय और सबसे अधिक प्राणवान शक्ति होते हैं। उनमें सीखने की सबसे तीव्र इच्छा होती है तथा उनके विचारों में रूढ़िवाद का प्रभाव सबसे कम होता है। समाजवाद के युग में यह बात खास तौर पर लागू होती है। हमें उम्मीद है कि विभिन्न जगहों के स्थानीय पार्टी-संगठन नौजवान संघ के संगठनों को सहायता देते हुए एक साथ मिलकर इस बात पर विचार करने की ओर ध्यान देंगे कि हमारे नौजवानों की शक्ति का पूर्ण रूप से कैसे विकास किया जाए। पार्टी-संगठनों को चाहिए कि वे नौजवानों के प्रति बाकी सब लोगों की ही तरह का बरताव न करें और उनकी विशेषताओं को नजरअन्दाज न करें। इसमें सदेह नहीं कि नौजवानों को भी बुजुर्गों और अन्य बालिग व्यक्तियों से सीखना चाहिए तथा तरह-तरह की उपयोगी गतिविधियों के लिए उनकी सहमति प्राप्त करने की यथाशक्ति कोशिश करनी चाहिए।

''चुङशान काउन्टी के शिनफ़िङ श्याङ की नं. 9 कृषि-उत्पादक सहकारी समिति का एक नौजवान अग्रिम दस्ता'' की परिचयात्मक टिप्पणी (1955)

कोई नौजवान क्रान्तिकारी है अथवा नहीं, यह जानने की कसौटी क्या है? उसे कैसे पहचाना जाय ? इसकी कसौटी केवल एक है, यानी यह देखना चाहिए कि वह व्यापक मजदूर-किसान जनता के साथ एकरूप हो जाना चाहता है अथवा नहीं, तथा इस बात पर अमल करता है अथवा नहीं? क्रान्तिकारी वह है जो मजदूरों व किसानों के साथ एकरूप हो जाना चाहता हो, और अपने अमल में मजदूरों व किसानों के साथ एकरूप हो जाता हो, वरना वह क्रान्तिकारी नहीं है या प्रतिक्रान्तिकारी है। अगर कोई आज मजदूर-किसानों के जन-समुदाय के साथ एकरूप हो जाता है, तो आज वह क्रान्तिकारी है; लेकिन अगर कल वह ऐसा नहीं करता या इसके उल्टे आम जनता का उत्पीड़न करने लगता है, तो वह क्रान्तिकारी नहीं रह जाता अथवा प्रति क्रान्तिकारी बन जाता है।

''नौजवान आन्दोलन की दिशा'' (4 मई 1939)

बुद्धिजीवी लोग जब तक तन-मन से क्रान्तिकारी जन-संघर्षों में नहीं कूद पड़ते, अथवा आम जनता के हितों की सेवा करने और उसके साथ एकरूप हो जाने का पक्का इरादा नहीं कर लेते, तब तक उनमें अक्सर मनोगतवाद और व्यक्तिवाद की प्रवृत्तियां बनी रहती हैं, उनके विचार अव्यावहारिक होते हैं और उनकी कार्रवाइयों में दृढ़ निश्चय की कमी बनी रहती है। इसलिए हालांकि चीन में क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों का जन-समुदाय एक हिरावल दस्ते की भूमिका अथवा एक सेतु की भूमिका अदा कर सकता है, फिर भी यह नहीं हो सकता कि उनमें से सभी लोग अन्त तक क्रान्तिकारी बने रहेंगे। कुछ लोग बड़ी नाजुक घड़ी में क्रान्तिकारी पांतों को छोड़ जाएंगे और निष्क्रिय बन जाएंगे, यहां तक कि उनमें से कुछ लोग क्रान्ति के दुश्मन भी बन जाएंगे। बुद्धिजीवी लोग केवल दीर्घकालीन जन-संघर्षों के दौरान ही अपनी कमियों को दूर कर सकते हैं।

''चीनी क्रान्ति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी'' (दिसम्बर 1939),

जिन लोगों को काम का अनुभव है, उन्हें सिद्धान्त का अध्ययन करना चाहिए और गम्भीरता से पढ़ना चाहिए; सिर्फ तभी वे लोग अपने अनुभव को व्यवस्थित और समन्वित कर सकेंगे तथा उसे सिद्धान्त के स्तर तक ऊंचा उठा पाएंगे, सिर्फ तभी वे लोग अपने आंशिक अनुभव को सर्वव्यापी सच्चाई समझने के भ्रम में नहीं पड़ेंगे तथा अनुभववादी गलती से बच सकेंगे।

''पार्टी की कार्यशैली में सुधार करो'', (1 फरवरी 1942)

ज्ञान एक वैज्ञानिक वस्तु है और इस मामले में जरा भी बेईमानी या घमण्ड की इजाजत नहीं दी जा सकती। इससे बिलकुल उल्टा रुखख़्रईमानदारी और नम्रताख़्रनिश्चित रूप से आवश्यक है।

''व्यवहार के बारे में'' (जुलाई 1937), संकलित रचनाएं

अज्ञात आवश्यकता का दास था। जैसे-जैसे मनुष्य प्राकृतिक नियमों के बारे में जानता गया, उसकी गतिविधियां सचेतन और मुक्त होती गयीं।

प्रकृति के अतिरिक्त मनुष्य की आजादी सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है। वर्ग समाज में विभिन्न वर्गों के बीच शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध होते हैं। सामाजिक सम्बन्ध मनुष्य के विरोध में खड़े होते हैं और उन पर हावी होते हैं।

फ्रेडरिक एंगेल्स ने स्वतंत्रता और आवश्यकता के सवाल को काफी विस्तार से समझाया है–

"हेगेल पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वतंत्रता और आवश्यकता के सम्बन्ध की सही व्याख्या की थी। उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता आवश्यकता की अनुभूति है। "आवश्यकता उसी हद तक अंधी होती है जिस हद तक वह समझी नहीं जाती।" स्वतंत्रता प्राकृतिक नियमों से स्वाधीन हो जाने के स्वप्न में निहित नहीं है, बल्कि वह इन नियमों के ज्ञान में तथा इस ज्ञान की सहायता से इन नियमों से निश्चित उद्देश्यों के लिए सुनियोजित ढंग से कार्य कराने की जो सम्भावना होती है, उसमें निहित है। यह बात बाह्य प्राकृतिक नियमों के लिए भी सच है और उन नियमों के लिए भी, जो खुद मनुष्यों के शारीरिक तथा मानसिक अस्तित्व पर शासन करते हैं।. ..अतः इच्छा की स्वतंत्रता का अर्थ विषय के ज्ञान के आधार पर निर्णय करने की सामर्थ्य के सिवा और कुछ नहीं है। इसलिए किसी खास प्रश्न के सम्बन्ध में किसी आदमी का मत जितना अधिक स्वतंत्र है, इस मत के सार को उतना ही अधिक आवश्यकता के साथ निर्धारित किया जायेगा; जब कि दूसरी ओर अज्ञान पर आधारित वह अनिश्चितता, जो बहुत से भिन्न-भिन्न प्रकार के तथा परस्पर विरोधी सम्भव निर्णयों से किसी एक को मनमाने ढंग से चुनती प्रतीत होती है, ठीक अपने इसी काय से निर्धारित कर देती है कि वह स्वतंत्र नहीं है, बल्कि वह स्वयं उसी वस्तु के नियंत्रण में है, जिसका उसे खुद नियंत्रण करना चाहिये था। अतः स्वतंत्रता अपने ऊपर तथा बाह्य प्रकृति पर नियंत्रण में निहित होती है और यह नियंत्रण प्राकृतिक आवश्यकता के ज्ञान पर आधारित होता है।"

पूंजीवादी समाज में मनुष्य का बाह्य परिस्थितियों पर कोई नियंत्रण नहीं होता। उसका भाग्य उसी के द्वारा उत्पादित माल से नत्थी होता है और वह बाजार और पूंजी की गति के रहम पर होता है। मजदूर अपने श्रम के उत्पाद से कटकर उसके द्वारा शासित हो जाता है। विभिन्न वर्ग अलग-अलग स्तरों पर अलगाव के शिकार होते हैं। इसलिए सच्ची स्वतंत्रता किसी के पास नहीं होती, क्योंकि बाजार की अंधी शक्तियां सब कुछ तय करती हैं।

मुक्ति की पूंजीवादी अवधारणा की आलोचना करने के लिए एक कम्युनिस्ट होना कोई पूर्वशर्त नहीं है। 'मनुष्य के मस्तिष्क की एकाकी प्रधानता' या 'मनुष्य की समाज से स्वतंत्रता' के भ्रामक सिद्धान्तों की आलोचना कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति कर सकता है। कहीं दूर क्यों जायें, भारतीय इतिहास में ही ऐसे तमाम चिंतक-विचारक रहे हैं, जो स्वतंत्रता की पूंजीवादी समझ को एक सिरे से खारिज करते हैं।

विवेकानन्द भी ऐसे ही एक चिंतक थे। वह जिस भारत में पले-बढ़े थे, जिस भारत को उन्होंने देखा-समझा था, वह अंग्रेजों के उपनिवेशवाद के जुवे तले दबा हुआ था। वहां रहने वाले लोग अंधविश्वासों, रूढ़ियों और अज्ञानता में जकड़े हुए थे। उनके सामाजिक चिन्तन का सर्वाधिक जोर था भारतीयों को साहसी, इच्छाशक्ति से परिपूर्ण बनाने पर, उन्हें शिक्षित और उन्नत बनाने पर और उनके अंधविश्वासों और रूढ़ियों को मिटाने पर। आम जनता के वैचारिक उत्थान को वह बेहद महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने कहा था कि इसके लिए देश का आर्थिक-राजनीतिक पुनर्निर्माण पहली पूर्वशर्त है। एक बार नास्तिकों की आत्माओं की रक्षा का रोना रोने वाली मिशनरियों और धार्मिक संस्थाओं से उन्होंने पूछा था : *"आप उनके शरीरों की भुखमरी से रक्षा क्यों नहीं करते?"* वह कहते थे कि *"वे* (आम जन–सं) *हमसे रोटी मांगते हैं, लेकिन बदले में हम उनके गले में धार्मिक सिद्धान्त उड़ेल देते हैं, यह उनका अपमान है।"*

वह कहते हैं :

"व्यक्ति की स्वतंत्रता, समुदाय की स्वतंत्रता में निहित है; समुदाय से अलग व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह एक शाश्वत सत्य है और वह आधारशिला है जिस पर संसार की रचना की गयी है। अपरिमित पूर्णता की ओर धीरे-धीरे इस भावना के साथ बढ़ना कि इसके साथ सहायता और तादात्म्य अनिवार्य हो, कि उसके सुख में हम सुखी हैं और उसके दुख में हम दुखी हैं, यही किसी व्यक्ति का परम कर्तव्य है।"

मुक्ति की पूंजीवादी अवधारणा का **रवीन्द्रनाथ ठाकुर** ने भी खण्डन किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर कोई मार्क्सवादी या भौतिकवादी नहीं थे। वे एक भाववादी दार्शनिक थे। जाहिर है कि वह भी परम यथार्थ, परम चेतना में आस्था रखते थे लेकिन उनके लिए यह चेतना, यह यथार्थ नैतिक तथा सौन्दर्यानुभूति के मूल्यों का मूर्त रूप था। वह मानव को ही अपने दर्शन का केन्द्र मानते थे। वह तो यहां तक कहते हैं–*"यह ब्रहमाण्ड यदि किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति नहीं है तो एक भयंकर छलावा है।"*

समाज में व्याप्त पार्थक्य (Segregation) की उन्होंने कड़ी भर्त्सना की है। वह लिखते हैं– *"हमारी आत्मा जब प्रेम के प्रकाश से जगमगा उठती है, तो दूसरों के उससे अलगाव का नकारात्मक पक्ष अपनी महत्ता खो देता है। अलगाव के इस प्रकार समाप्त हो जाने पर मनुष्य वस्तुओं के यथार्थ को उनकी पूर्णता और सार्वत्रिकता में देख पाता है।"*

वह व्यक्तिगत महानता को स्वीकार करने के साथ ही व्यक्तिवाद की घोर आलोचना करते थे। वह इस सत्य को स्वीकार करते थे कि मनुष्य की पूर्णता के दो पहलू होते हैं–व्यक्तिगत और सामाजिक।

"वैयक्तिक सफलता कभी पूर्ण और निरपेक्ष नहीं हो सकती। जिन लोगों ने मनुष्यों के बीच उच्चतम पद प्राप्त किये हैं, उनकी शक्ति समष्टि की शक्ति से अभिव्यक्त होती है; वह समष्टि की शक्ति से अलग और भिन्न नहीं है। जहां एक व्यक्ति के रूप में अलगाव पैदा होता है, जहां पारस्परिक सहयोग घनिष्ठ नहीं होता है, वहां बर्बरता का साम्राज्य होता है।"

रवीन्द्रनाथ अलगाव और अकेलेपन से घृणा करते थे। इन्हें वे मानव-जाति से विजातीय प्रवृत्तियों के रूप में रेखांकित करते थे।

पूंजीवाद जिन सामाजिक और मानवीय सम्बन्धों को 'कुदरती' तौर पर आजाद मनुष्य के पैरों में बेड़ी बताता है, रवीन्द्रनाथ ने उनके

बारे में कुछ यूं लिखा है–

"मैं इन बंधनों से घृणा नहीं करता, वे मुझे जकड़े या बांधे हुए नहीं हैं, वे तो मुझे स्वयं अपनी आत्मा के पाश से बाहर निकालकर अपने मस्तिष्क को उन्मुक्त करने और स्वयं को विस्तारित करने में मेरी सहायता करते हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय विचारकों ने भी मुक्ति के बुर्जुआ दृष्टिकोण की अपने ढंग से और अपनी सीमाओं में आलोचना की है। इसके अतिरिक्त हमें विश्व-स्तर पर भी ऐसे तमाम दार्शनिक-चिंतक-विचारक मिलेंगे जो मार्क्सवादी दार्शनिक अवस्थिति पर नहीं खड़े थे, पर जिन्होंने समाज से व्यक्ति की असम्बद्धता को अस्वीकार किया है। इन्हीं में से एक थे महान वैज्ञानिक **अल्बर्ट आइंस्टीन।**

अपनी पुस्तक 'आइडियाज एण्ड ओपिनियंस' के 'समाज एवं व्यक्तित्व' नामक लेख में वह लिखते हैं :

"अगर हम अपने जीवन और अपने प्रयासों का सर्वेक्षण करें तो जल्द ही यह पायेंगे कि हमारी लगभग सभी गतिविधियां और इच्छाएं दूसरे मनुष्यों के अस्तित्व के साथ जुड़ी हैं। हम पायेंगे कि हमारी प्रकृति सामाजिक जीवों की प्रकृति से मेल खाती है। हम जो खाना खाते हैं, वह दूसरे लोग पैदा करते हैं, हम जो कपड़े पहनते हैं वह दूसरे लोगों ने बनाये हैं, हम जिन घरों में रहते हैं उनका निर्माण भी दूसरे लोगों ने किया है। हमारे ज्ञान और आस्थाओं के बड़े हिस्से का स्रोत अन्य लोग हैं, जिसका हम तक पहुंचने का माध्यम भी उन लोगों द्वारा रचित भाषा है। भाषा के बिना निश्चित ही हमारी मानसिक क्षमतायें दूसरे उच्चतर जीवों की तुलना में कमजोर होतीं; इसलिए हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जानवरों से हम जिस मामले में बेहतर हैं, वह है हमारा मानव समाज में अस्तित्वमान होना। एक व्यक्ति को अगर उसके जन्म से अकेला छोड़ दिया जाये तो अपने विचारों और भावनाओं में वह इस कदर आदिम और जंगली रह जायेगा जिसकी हम कल्पना भी मुश्किल से कर सकते हैं। एक व्यक्ति का जो भी महत्व है वह उसके व्यक्तित्व की बदौलत नहीं है, बल्कि उसके एक महान मानव-समुदाय का सदस्य होने के चलते है, जो जन्म से लेकर मृत्यु तक उसके भौतिक और आत्मिक अस्तित्व को निर्देशित करता है।"

आइन्स्टीन समाज से मनुष्यों के सम्बन्ध की पूंजीवादी सोच पर तीखा प्रहार करते हैं। वह मानते हैं कि आज पूंजीवाद यह सीख दे रहा है कि मनुष्यों को समाज से अपने सम्बन्ध पर लज्जित होना चाहिये। वह लिखते हैं–

"अब मैं उस मुकाम तक पहुंच गया हूं जहां मैं संक्षेप में यह बता सकूं कि मेरे हिसाब से आज की समस्या की जड़ कहां है। इसका सरोकार मनुष्य से मनुष्य के सम्बन्ध से है। समाज पर अपनी निर्भरता के विषय में आज आदमी जितना सचेत है, उतना पहले कभी नहीं था। लेकिन समाज पर अपनी इस निर्भरता को वह एक सकारात्मक विशेषता, एक सहज व स्वभावगत बंधन, एक रक्षक शक्ति के रूप में नहीं देखता है, उल्टे वह इसे अपने नैसर्गिक अधिकारों के लिए, यहां तक कि अपने आर्थिक अस्तित्व के लिए एक खतरे के रूप में देखता है। इसके अलावा, समाज में उसकी स्थिति ऐसी होती है कि उसके दिमाग की व्यक्तिवादी और अहंवादी रुझानें लगातार शक्तिशाली होती जाती हैं, जबकि सामाजिक रुझानें जो मूलतः कमजोर होती हैं, वह तेजी से और भी कमजोर होती जाती हैं। हरेक मनुष्य, चाहे समाज में वह किसी भी जगह हो, इस ह्रास की प्रक्रिया का शिकार है। अनजाने में वह अपने अहंकार की कैद में आ जाता है। और अपने-आपको अकेला, असुरक्षित और असहाय महसूस करता है।"

आइन्स्टीन मानते हैं कि मनुष्य जीवन में अर्थ तभी पा सकता है जब वह अपने आपको एक समाज के जिम्मेदार सदस्य के रूप में देखे, और स्वयं को समाज को समर्पित कर दे।

एक पूंजीवादी समाज में सामाजिक सम्बन्ध मनुष्य के लिए बाधा बन जाते हैं। फलतः व्यक्ति समाज को ही अपनी स्वतंत्रता के रास्ते का रोड़ा समझने लगता है। मार्क्सवादी विश्व-दृष्टिकोण इस विडम्बना को बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से देखता और विश्लेषित करता है। इस सन्दर्भ में **स्वतंत्रता और आवश्यकता** का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसका हम संक्षेप में उल्लेख कर चुके हैं। स्वतंत्रता की जमीन है आवश्यकता को समझना। जैसाकि पहले भी उल्लिखित है कि आदिम मनुष्य प्रकृति के नियमों से अनजान था, और इसलिए स्वतंत्र नहीं था। यही बात सामाजिक प्रकृति के साथ भी लागू होती है। वर्ग समाज में सामाजिक सम्बन्ध व्यक्तियों के प्रति दुश्मनाना रुख अपनाते हैं। ऐसा भी समझा जाता है कि आवश्यकता और स्वतंत्रता विपरीत चीजें हैं। जहां आवश्यकता होगी वहां स्वतंत्रता तो हो ही नहीं सकती, इसलिए अगर कोई स्वच्छन्दता से कार्य करे तो आवश्यकता से बच सकता है। लेकिन यह एक गलत अप्रोच है। दुनिया में हर घटना की तरह मानव के क्रियाकलापों के पीछे कुछ कारणात्मक नियम होते हैं।

मनुष्य जिस मामले में अन्य जन्तुओं से मानसिक धरातल पर भिन्न होता है वह उसकी समाहार करने की क्षमता है। वह अपने प्रयोगों और प्रयासों का समाहार करके आवश्यकता की अपनी समझ को लगातार विकसित करता जाता है। यह प्रक्रिया उसकी उत्पादक कार्रवाई से शुरू होती है जिसमें वह अपने श्रम को विशेषज्ञ तरीके से लगाकर प्रकृति के संसाधनों को अपनी जरूरत के अनुसार रूपान्तरित करता है और अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है। लेकिन इससे वे प्राकृतिक आवश्यकता से मुक्त नहीं होते। वे उन पर नहीं लेकिन उनकी समझ पर निर्भर करते हैं। **मनुष्य प्रकृति से नहीं बल्कि प्रकृति के अज्ञान से मुक्त होता है, कुदरत की "अंधी ताकतों" से मुक्त होता है।** प्रकृति पर विजय का अर्थ है मनुष्यों द्वारा उसके नियमों का ज्ञान हासिल करना और उसे मानव समाज की भलाई के लिए इस्तेमाल करना। स्वतंत्रता बाह्य प्रकृति या सामाजिक प्रकृति से कटने में नहीं बल्कि उनकी समझ में निहित है।

एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि स्वतंत्रता पूरा समाज या मानव-जाति नहीं हासिल करती, एक व्यक्ति हासिल करता है। लेकिन यह बात कभी नहीं नजरअंदाज की जा सकती कि एक व्यक्ति स्वतंत्रता समाज के जरिये ही हासिल कर सकता है। इसकी वजह यह है कि स्वतंत्रता को हासिल करने का औजार है ज्ञान, और ज्ञान प्रकृति से हीं सामाजिक होता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता उसके समाज के उपार्जन पर निर्भर करती है। वह समाज किस हद तक अन्य मनुष्यों से उसे सहकार उपलब्ध कराता है,

उसकी मुक्ति का प्रश्न इससे भी जुड़ा हुआ है। एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि समाज हरेक व्यक्ति को अपने उपार्जन की हिस्सेदारी की अनुमति देता है या नहीं, या किस हद तक देता है। यानी व्यक्ति की स्वतंत्रता इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह अपने समाज के उपार्जनों का इस्तेमाल कर सकता है या नहीं। समाज प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संभावनाओं को पूर्ण करने, सामाजिक संसाधनों का इस्तेमाल करने और समूह के प्रयत्नों से हासिल ज्ञान को साझा करने की इजाजत और मौका देता है या नहीं, यह सवाल बुनियादी सवाल है, विशेषकर व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए।

आदिम समाज में मनुष्य की गुलामी के लिए प्रकृति का अज्ञान जिम्मेदार था। जैसे-जैसे मनुष्य ने प्रकृति के नियमों को जाना और इस ज्ञान का उपयोग विकास के लिए किया, वैसे-वैसे वह प्रकृति की गुलामी से मुक्त होता गया। लेकिन जब यह सब कुछ हो रहा था तो मनुष्य अपनी स्वतंत्रता के रास्ते में एक दूसरी बाधा खड़ी करता गया। सभ्य समाज के अस्तित्व में आने के साथ शत्रुतापूर्ण वर्ग भी अस्तित्व में आये। वर्ग-सम्बन्ध मनुष्य की स्वतंत्रता में बाधा बन गये। ऐसा एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण से हुआ।

वर्ग समाज में स्वतंत्रता की और उसे प्राप्त करने की एक वर्गीय पृष्ठभूमि होती है। हर वर्ग की स्वतंत्रता की अपनी अवधारणा होती है। वर्ग-संघर्ष की विभिन्न मंजिलों से होते हुए मानव मुक्ति की यात्रा आज पूंजीवादी समाज तक पहुंची है, जहां मुक्ति की पूंजीवादी धारणा हावी है। पूंजीवादी समाज में उत्पादन-प्रक्रिया के जटिल होते जाने के साथ ही इसका नियंत्रण मनुष्य के हाथ से निकल जाता है। इस तरह मनुष्य अपने ही श्रम की उपज और प्रक्रिया का गुलाम हो जाता है। यही परिघटना पूंजीवादी समाज में माल अंधभक्ति, अराजकता, अलगाव और अव्यवस्था को भी जन्म देती है। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में प्रकृति मनुष्य को उत्पादक शक्तियों के विकास के जरिये अपने आपको मुक्त करने के अवसर भी देती है। उत्पादक शक्तियों के विकास के कारण उत्पादन सम्बन्ध बदली हुई स्थिति में पहुंच जाते हैं। यह परिघटना आदमी को उस स्थिति में पहुंचा देती है जहां वह आर्थिक आवश्यकता के हाथों अपनी गुलामी को समझ पाता है। यही चीज *अज्ञानता* पर *चेतना* की अन्तिम विजय सुनिश्चित करती है, *अंधी आवश्यकता* पर *तर्क* की जीत सुनिश्चित करती है। जब आदमी अपनी गुलामी की जमीन समझ लेता है, यानी एक पूंजीवादी समाज में जब वह उत्पादन की अराजकता को अपनी गुलामी के कारण के रूप में देख लेता है, तब वह उत्पादन को व्यवस्थित करने के लिए संघर्ष करता है, और उसे अपनी इच्छा की दिशा में मोड़ता है। और इस तरह आदमी आवश्यकता के राज्य से स्वतंत्रता के राज्य में छलांग लगाता है। ऐसे हर समाज में जहां यह छलांग लगाई जानी है, सामाजिक सम्बन्ध लोगों की स्वतंत्रता में बाधा बनते हैं।

यही कारण है कि तमाम ईमानदार चिंतक भी इस भ्रम का शिकार हो जाते हैं कि समाज ही व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक है। पूंजीवादी समाज में व्यक्ति और समूह के हित नदी के दो किनारे होते हैं।

एक पूंजीवादी समाज में ये सम्बन्ध समूह के और व्यक्ति के हितों के टकराव की जमीन पर खड़े होते हैं, ऐसे टकराव पूंजीवादी समाज के साथ ही खत्म हो सकते हैं। पूंजीवादी विचार कहता है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता और समूह की सदस्यता का एक साथ अस्तित्वमान रहना सम्भव ही नहीं है। वह कहता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व और वैयक्तिकता तो समूह के बाहर ही निखरती है। यही सोच आज अमेरिकी समाज में सामाजिक-मानवीय संवेदनाओं के पतन का कारण बनती जा रही है। समूह और उसके हितों पर पूंजीवाद का चिन्तन अधिक से अधिक सहकारिता पर जाकर खत्म हो जाता है और इस तरह से व्यक्ति के हितों को वह व्यक्तिवाद और अराजकतावाद में न्यूनीकृत कर देता है। इसके विपरीत समाजवादी समाज में समूह और व्यक्ति के एक समान हित और एक समान लक्ष्य ही, व्यक्ति-समूह सम्बन्ध की बुनियाद होते हैं। **व्यक्ति सिर्फ और सिर्फ समूह में ही अपनी योग्यता और अपने व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास कर सकता है और वैयक्तिक स्वतंत्रता केवल समूह में ही मुमकिन है।**

पूंजीवादी चिंतक व्यक्ति को समाज में पूरी तरह से स्वायत्तता दिये जाने की वकालत करते हैं। वे दावा करते हैं कि व्यक्तिवाद मानव स्वभाव का अपरिवर्तनीय अंग है जो मनुष्य की अधिकांश गतिविधियों को निर्देशित करता है। दरअसल, व्यक्तिवाद बुर्जुआ नैतिकता की आधारशिला है। यह व्यक्ति और समूह को परस्पर विरोधी बताता है और सामूहिक हितों को व्यक्तिगत हितों के मातहत करना ही इसका लक्ष्य होता है। पूंजीवाद की स्थापना से लेकर आज तक व्यक्तिवाद का चरित्र लगातार मानवद्रोही होता गया है।

पूंजीवाद के अन्तर्गत मनुष्य परिस्थितियों द्वारा नियंत्रित होता है, उसका दास होता है। ये परिस्थितियां होती हैं पूंजी और बाजार की, जिनकी दया पर मनुष्य होता है। वैयक्तिकता की गारण्टी तभी हो सकती है जब उत्पादकों के समूह द्वारा समाजीकृत उत्पादन शुरू होता है, जिसमें समूह के विकास की शर्त होती है प्रत्येक व्यक्ति का विकास। वैयक्तिकता सही मायनों में ऐसे समाज में ही निखर सकती है जिसमें उत्पादन के साधनों पर पूरे समाज का अधिकार हो और जिसकी चालक शक्ति निजी मुनाफा नहीं बल्कि सामाजिक हित है।

जब समाजवादी समाज में जनता उत्पादन के साधनों के सामूहिक स्वामित्व के जरिये अपने सामाजिक संगठन को अपने सचेतन नियंत्रण में लाती है तो मानव स्वतंत्रता में एक निर्णायक छलांग लगती है। जब समाजवादी समाज की उन्नत मंजिलों में मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का खात्मा हो जाता है और सम्पत्ति के सामाजिक मालिकाने के जरिये इसका उपयोग प्रत्येक व्यक्ति की जरूरत पूरी करने के लिए होने लगता है तो लोगों को आजादी के संघर्ष करने के बजाय आजादी को जीने का ज्यादा मौका मिलता है। साथ ही इस स्वतंत्रता को और विस्तारित कैसे किया जाये, यह भी लोग समझते जाते हैं। और जब कम्युनिस्ट समाज में उत्पादन के साधनों और उत्पादों के हाथों दासता का अंश-अंश समाप्त हो जाता है, तब मनुष्य स्वतंत्रता के उच्चतम सम्भव धरातल पर पहुंच जाता है। एंगेल्स के शब्दों में– *"और तब एक मायने में मनुष्य पहली बार शेष प्राणिजगत से अलग होता है और जीवन की निरी पाशविक अवस्थाओं से निकलकर यथार्थ रूप से मानवीय अवस्थाओं में प्रवेश करता है। जीवन की जो अवस्थायें मनुष्य को घेरे हैं और जो अभी तक उस पर शासन करती आयी हैं, उनका*

संपूर्ण क्षेत्र मनुष्य के अधिकार और नियंत्रण में आ जाता है। मनुष्य पहली बार प्रकृति का वास्तविक और सचेत रूप से स्वामी हो जाता है, क्यों कि अब वह अपने सामाजिक संगठन का स्वामी बन गया है।... यह मनुष्य की आवश्यकता से स्वतंत्रता के राज्य में छलांग है।"

मॉरिस कॉर्नफोर्थ ने इस बात को बड़े सारगर्भित ढंग से चंद लाइनों में प्रस्तुत किया है :

"लोग आजाद ही पैदा नहीं होते, बल्कि धीरे-धीरे आजादी हासिल करते हैं। स्वतंत्रता प्रकृति पर विजय के लिए संघर्ष और वर्ग संघर्ष द्वारा हासिल की जाती है और विकसित की जाती है। वर्ग समाज में स्वतंत्रता दरअसल विभिन्न वर्गों द्वारा हासिल और धारण की जाती है। उनकी स्वतंत्रता पर बाधाएं ठोस रूप में अलग-अलग प्रकार से लगती हैं, जो उन वर्गों की अवस्थिति और लक्ष्य पर निर्भर करता है। स्वतंत्रता के लिए संघर्ष मूलतः जनता का अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए किया जाने वाला संघर्ष है। जीवन की पाशविक स्थिति से शुरू होकर मानव जाति स्वतंत्रता प्राप्ति के मार्ग पर लगातार बढ़ती जाती है, जो कम्युनिस्ट समाज की ओर जाती है। स्वतंत्रता के उद्भव की मंजिलें नैतिकता के उद्भव की मंजिलें भी हैं।[21]

स्पष्ट तौर पर इक्कीसवीं सदी के मुक्तिकर्ता के कार्यभार, जिम्मेदारियां, लक्ष्य और रास्ता पुनर्जागरण-कालीन मुक्तिकर्ता से बिल्कुल अलग हैं। उसे यह सच सामने लाना है कि मौजूदा सामाजिक व्यवस्था की सीमाएं और बन्धन स्वतंत्रता के भेस में मानव सभ्यता के गुणात्मक विकास के रास्ते में बाधा बने हुए हैं। उसे यह बात समझानी होगी कि पुनर्जागरण काल में सामन्तवाद की जंजीरों से स्वतंत्रता दिलाने वाले विचार आज स्वयं ही मनुष्य के लिए बेड़ियां बन गये हैं।

उसे जनता के बीच इस सत्य को स्थापित करना होगा कि **पूंजीवादी समाज का सकारात्मक केवल सामन्तवादी समाज से उसकी श्रेष्ठता में निहित है।** उसके अतिरिक्त यह एक वर्ग-विभाजित समाज है जिसके मूल में मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण ही है। आज के मुक्तिकर्ता के एजेण्डे में जहां एक ओर मेहनतकश आबादी को उसकी गुलामी का कारण समझाना और मुक्ति का रास्ता दिखाना शामिल होगा, वहीं मध्यवर्ग के मानस-पटल पर से मुक्ति के प्रश्न पर छाई धुंध को हटाना भी शामिल होगा। मेहनतकश आबादी में इस बात को प्रचारित-प्रसारित करना उसका कर्तव्य होगा कि शोषण पर आधारित आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था का ध्वंस और समानता और न्याय पर आधारित समाज को स्थापित करने, यानी समाजवाद को स्थापित करने और कम्युनिज्म की प्राप्ति परियोजना में ही उनकी मुक्ति निहित है। जनता जंगलों में नहीं बल्कि सामाजिक सहकार की उच्चतम सम्भव मंजिल (साम्यवाद) पर ही वास्तविक आजादी प्राप्त करेगी।

पूंजीवादी व्यवस्था का सिद्धान्त है कि लोग तब आजाद हो सकते हैं कि जब प्रत्येक व्यक्ति मुनाफा लूटने के लिए आजाद हो। पूंजीवादी मुक्ति के तर्क के अनुसार, चूंकि सबको स्वेच्छा से अपनी इच्छापूर्ति का अधिकार है, खाली हाथ लोगों को चन्द लोगों के हाथों में सीमित भौतिक सम्पदा को छीन लेने का भी हक है। लेकिन इस बात पर पूंजीवादी चिंतक, बुद्धिजीवी, सिद्धान्तकार, कानून निर्माता, सब के सब घबड़ाकर एक स्वर में में चीख उठते हैं—"नहीं, नहीं, मुक्ति के बारे में हमारा यह मतलब नहीं था। यह तो लूटपाट है, सज्जनों पर हमला है।" इसी मौके के लिए, यानी अमीरजादों की पूंजीवादी स्वतंत्रता की, वंचितों की पूंजीवादी स्वतंत्रता से रक्षा के लिए ही, राज्य, पुलिस, सेना, न्यायालय आदि, जैसे औजार होते हैं।

आखिर आज करोड़ों-करोड़ आम जन क्या चाहता है? वह पढ़ना चाहता है, वह सर्वतोमुखी विकास और प्रगति चाहता है, वह रोजगार चाहता है, घर चाहता है; वह यह नहीं चाहता कि साम्राज्यवादी युद्धों की चक्की में फंसकर अपने जैसे दूसरे मनुष्यों का कत्ल करे या उनके हाथों मारा जाये, वह भूख नहीं चाहता, वह गरीबी-अशिक्षा-बेरोजगारी-बदहाली नहीं चाहता है। क्या आज एक आम भारतीय यह चीजें पा सकता है? नहीं। इसके बाद उसे "अभिव्यक्ति और चुनने की आजादी" के बारे में बताया जाता है, उसके गले में "राष्ट्रवाद" और "धर्म" का घोल उड़ेला जाता है। क्या यह सब आम मेहतनकश आबादी के साथ एक घिनौना मजाक नहीं है?

जब तक जनता की बुनियादी जरूरतें पूरी नहीं होती, कोई आजाद नहीं है। और यह काम करने में पूंजीवादी व्यवस्था अक्षम है। इसके ध्वंस, समाजवाद की स्थापना और कम्युनिज्म में संक्रमण के बाद ही ये आवश्यकतायें पूर्ण होंगी। तब आदमी आवश्यकताओं को समझेगा, और सामाजिक और प्राकृतिक गतियों के नियमों के ज्ञान को प्राप्त कर अपनी गतिविधियों को मानव जाति के कल्याण की दिशा में मोड़ेगा और सही मायने में स्वतंत्र होगा, और तब **आवश्यकता के राज्य से स्वतंत्रता के राज्य में छलांग लगेगी।**

घोषणापत्र : प्रपत्र 1

पत्रिका का नाम	- आह्वान कैम्पस टाइम्स
प्रकाशन का स्थान	- गोरखपुर
प्रकाशन अवधि	- त्रैमासिक
प्रकाशक/स्वामी का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर', कल्याणपुर, गोरखपुर
मुद्रक का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर', कल्याणपुर, गोरखपुर
संपादक का नाम	- अभिनव
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर', कल्याणपुर, गोरखपुर

मैं, आदेश सिंह, एतद् द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सत्य ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

हस्ताक्षर
आदेश सिंह
दिनांक : 31.1.2002 प्रकाशक/मुद्रक/स्वामी

छिः! थू! धिक! लानत है!

सत्यव्रत

'जनसत्ता' में प्रकाशित एक खबर के अनुसार, **लीलाधर जुगाड़ी** (पहले ये **लीलाधर जगूड़ी** कहलाते थे!) उत्तरांचल विधान सभा चुनाव में कांग्रेस का टिकट पाने के लिए जुगाड़ भिड़ाने में व्यस्त हैं।

आम पाठक तो इन्हें नहीं जानते होंगे लेकिन **परमानन्द श्रीवास्तव** जैसे लोहियावाद से मार्क्सवाद में संक्रमण किये हुए स्वनामधन्य आलोचक इन्हें शीर्षस्थ कलावंत वामपंथी कवि करार देते रहे हैं। जुगाड़ी जी हिकमत, तिकड़म और जुगाड़ से नीचे से ऊपर उठे, सभी चुनावबाज दलों की सरकारों के मातहत, उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग में सेवारत रहे। उधर साहित्याकाश पर भी आपकी चमक बढ़ती रही। आलोचक खुश रहे और "तू मेरी सूंघ, मैं तेरी सूंघूं" की रस्म के मुताबिक बिरादर कविगण भी आपके मुखड़े की पालिश चमकाते रहे।

कांग्रेस टिकटार्थियों की लाइन में जुगाड़ी जी लीला करना विशेष ध्यानाकर्षण का विषय इसलिए भी है कि अभी कुछ ही महीने पहले उत्तरांचल के पूर्व मुख्यमंत्री, भाजपाई नित्यानन्द स्वामी के विशेष सूचना सलाहकार के तौर पर काम करते हुए जुगाड़ी जी ने नवनीत-लेपन के विगत समस्त कीर्तिमानों को ध्वस्त करते हुए उन्हें **"उत्तरांचल पिता"** तक की उपाधि दे डाली थी। उत्तराखण्ड की जनता तो जनता, नरमपंथी बुद्धिजीवियों तक को जुगाड़ी जी का "हद से यूं गुजर जाना" कुछ जंचा नहीं। **'नैनीताल समाचार'** ने जुगाड़ी के इस कुकृत्य पर यूं टिप्पणी की, "नित्यानंद स्वामी आपके पिता अवश्य हो सकते हैं, लेकिन उन्हें उत्तरांचल पिता कहकर सम्पूर्ण उत्तराखण्ड की संघर्षशील जनता का अपमान करने का हक आपको किसने दिया जगूड़ी जी?"

वीभत्स रस से भरपूर इस पटकथा का पूर्वभाग यह है कि उ. प्र. सूचना विभाग में काम करते हुए अपनी चारण-प्रतिभा से जुगाड़ी जी ने अपने स्वामियों को इस कदर प्रभावित कर लिया था कि एक स्वामी—नित्यानन्द के भाग्य से जब उत्तरांचल के मुख्यमंत्री पद का छींका टूटा तो वे अपनी पूंछ में बांधकर जुगाड़ी जी को भी वहां ले गये। चूंकि जुगाड़ी जी अवकाश-प्राप्ति की उमर को पहुंच चुके थे, इसलिए उनकी खातिर स्वामीजी ने 'सूचना सलाहकार' का विशेष पद सृजित किया। जुगाड़ी जी की किस्मत से जलने वालों ने भाजपा के शिखर-पुरुषों के कान भरने शुरू किये कि जुगाड़ी तो वामपंथी है, घात कर सकता है। जुगाड़ी जी डरे। उन्होंने तत्काल स्वामी जी को 'उत्तरांचल पिता' कहते हुए आश्वस्त किया कि "वामपंथी तो मैं कविता के प्रदेश में हूं, यहां तो मैं आपका कुत्ता हूं।" लेकिन विडम्बना यह कि सत्ता-राजनीति की दौड़ में नित्यानन्द स्वामी भाजपाइयों के लिए 'सौदागर के बूढ़े घोड़े' के माफिक होने के चलते उठाकर किनारे धर दिये गये और जुगाड़ी जी वह हो गये जो न घर का होता है न घाट का! पर वह जुगाड़ी क्या जो हार मान जाये। जुगाड़ी जी ने वामपंथ से बस एक चीज सीखी थी—लगे रहने के मामले में उद्दाम आशावादी होना! सो वे लगे रहे। भाजपा की जगह कांग्रेस के दरवाजे जा लगे।

सुनने में आया है कि उत्तराखण्ड में गिरगिट और केंचुए कहीं नहीं दीखते। जुगाड़ी जी से शर्माकर वे मुंह छुपाये फिर रहे हैं।

●

वे कवि महोदय शायद जुगाड़ी जी के ही पूर्वज थे जिन्होंने लिखा था, "हमारे जार्ज पंजुम को भगवन चिरायू कीजिए।" लोककवियों के समान्तर ऐसे चारण कवियों की परम्परा पुरानी रही है जो राजाओं की विरुदावली गाकर सिक्के बटोरा करते थे। जुगाड़ी जी ने उस कला-कौशल को महीन बनाया है। कविता की दुनिया में वे वामपंथी हैं और उस दुनिया से अर्जित शब्द-चातुर्य के सहारे सत्ता और पद-ओहदे की दुनिया में वे चारणाधिराज हैं, भाट-शिरोमणि हैं, उत्कृष्टतम चम्मच हैं, चमकती हुई जादुई सुनहली पूंछ हैं जिसे सुविधानुसार इस पिछवाड़े से उस पिछवाड़े जा सटने का वरदान प्राप्त है।

जुगाड़ी जी के एक पितर पुरुष कविवर श्रीकांत वर्मा थे, कविता की दुनिया में अकविता से जनवादी कविता तक उनकी 'रेंज' थी तथा राजनीति में मार्क्सवाद से बरास्ता लोहियावाद "कांग्रेसवाद" तक। आपातकाल के हत्यारे काले दिनों में इन्दिरा गांधी के खासुलखास थे, उनके लिए नारे गढ़ते थे और गुण्डा गिरोह के सरगना संजय गांधी के पोस्टरों के रूपाकार सजाते थे। सेवा के पुरस्कार स्वरूप वे राज्यसत्ता सदस्य भी रहे और उनके मरणोपरान्त उनकी पत्नी को भी यह पदसुख मिला। आज का कुख्यात आर्थिक अपराधी, करोड़पति अभिषेक वर्मा उन्हीं का पुत्र है।

श्रीकान्त वर्मा की एक खासियत रही कि वे अंत तक कांग्रेस के दरवाजे पर ही बंधे रहे। पर जुगाड़ी जी पैंतरापलट-कौशल में उन्हें पीछे छोड़ते हुए चन्द एक महीनों के भीतर ही भाजपा से कांग्रेस के घाट जा लगे। देखें, वहां अपनी विश्वसनीयता सिद्ध करने के लिए वे अब किसको किसका पिता सिद्ध करते हैं!

●

कुछ दशकों बाद हमारे समय को जब याद किया जायेगा तो तमाम विशिष्ट

अभिलाक्षणिकताओं के साथ ही, संस्कृति की दुनिया में व्याप्त अवसरवाद के घृणिततम रूपों की भी चर्चा अवश्य की जायेगी।

जुगाड़ी कोई अकेले नहीं हैं। "मार्क्सवादी आलोचक-शिरोमणि" नामवर सिंह और बारीक-महीन रेशमी कतान वाली कथित जनवादी काव्यधारा के कविकुल गुरु केदारनाथ सिंह घुटे-घुटाये बुर्जुआ राजनीतिज्ञ चन्द्रशेखर को "युगपुरुष" घोषित कर रहे हैं! क्रान्ति और कविता पर बोलते-बोलते नामवर सिंह एक भाजपाई महिला और एक उच्च पुलिस अधिकारी की पुस्तक का विमोचन करने चले जाते हैं और वहां 'अहो-अहो' करते हुए लगभग गश खा जाते हैं। जीवित पितर-परम्परा बने हुए त्रिलोचन शास्त्री एक भाजपाई मंत्री के हाथों सुलभ शौचालय वालों का पुरस्कार ग्रहण करते हैं और कई-कई लखटकिया पुरस्कार पाने के बावजूद केदारनाथ सिंह शहीद शंकर गुहा नियोगी के हत्यारों से पुरस्कार लिये बिना चैन नहीं पाते। उधर युवा वामपंथी आलोकर पुरुषोत्तम अग्रवाल विश्वनाथ प्रताप सिंह की कविता और कला पर मुग्ध होकर घोषित कर देते हैं कि उन जैसा संवेदनशील व्यक्ति ही भारतीय राजनीति को नई दिशा दे सकता है! पद-पीठों-पुरस्कारों की राजनीति से क्षुब्ध युवा कवि नीलाभ लिखते हैं : "हमको दे दो एक वजीफी, हमको दे दो एक इनाम" और कुछ दिन बीतते ही महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय की परियोजनाओं से नत्थी होकर अशोक वाजपेयी के खास बन जाते हैं।

आज से आधी सदी पहले मुक्तिबोध ने लिखा था :

"देख कीर्ति के नितम्ब इठलाते–
लालच ने पुकार की
पीड़ा भरी हुंकार की,
लोभ-ईर्ष्या, तब रंगीन
उड़न-छू पंख पसारकर
उन्हीं नितम्बों पर जा बैठे
उनका रंग उभारकर,
नितम्ब बढ़ते गये–
प्रतिष्ठा के महत्व के सार थे।"
...

आज लोभ-ईर्ष्या की हुंकार से दिग-दिगन्त गूंज रहे हैं। कवि-कलावन्तों की निगाहों के सामने बस एक ही चीज है–कीर्ति के इठलाते नितम्ब।

विडम्बना यह है कि इन अवसरवादियों में जो सबसे आगे हैं, उन्हें वामपंथी माना जाता है। क्या सचमुच ये वामपंथी हैं? गेहूं के खेत में गेहूं के पौधे जैसे रूप रंग वाला ही एक खतरनाक खर-पतवार पाया जाता है जिसे किसान "गेहूं का मामा" कहते हैं। ये सभी सत्तासेवी, अवसरवादी कवि-लेखक-आलोचक दरअसल गेहूं के खेत में पनपने वाले "गेहूं के मामा" हैं। ऐसा नहीं कि इनकी रचनाओं में छद्म वामपंथ की शिनाख्त नहीं की जा सकती! बखूबी की जा सकती है। लेकिन कौन करेगा? वे गंदे धंधेबाज गुटबाज आलोचक, जिनका जमीर कोठे के दलालों से भी गया-गुजरा है?–कतई नहीं। वे तो स्वयं सत्ता-दरबार के विशेष पत्तल चाटने वाले लोग हैं!

सच यह है कि साहित्य की दुनिया में चूंकि आज भी वामपंथ का ही सिक्का चलता है, इसलिए ये सभी कलावंत लोग रचनाओं में वामपंथ का छद्म रचते हैं और जीवन में निष्ठापूर्वक सत्ता-धर्म निभाते हैं। आप कभी राजधानी के किसी आयोजन को देखिये–दारू-बोटी-गाड़ी-बंगला वाले "वामपंथी" गुनीजनों की धकापेल देखकर सारा माजरा समझ में आ जायेगा। साहित्य-कला की दुनिया में ये वामपंथी अभिजन वस्तुतः 'ट्रोजन हॉर्स' की भूमिका ही निभा रहे हैं।

साहित्य की दुनिया के इन्हीं खेल-तमाशों की पृष्ठभूमि में, लीलाधर जुगाड़ी ने चाटुकारिता के परचम पर जो नये सलमा-सितारे टांके हैं, उसे देखकर तथा नामवर-केदार जैसों की ऐसी ही हरकतों को देखकर तथा नामवर-केदार जैसों की ऐसी ही हरकतों को देखकर हमें दरबारी संस्कृति से जुड़ा एक पुराना किस्सा याद आ रहा है। रोम के पतनशील दौर का अतिभ्रष्ट और आततायी सम्राट नीरो समलैंगिक था। उसने जब धूमधाम के साथ एक लौंडे से ब्याह रचाया तो उसके दरबारियों ने जय-जयकार करते हुए उसे पुत्रवान होने की शुभकामनाएं दीं। आज के जुगाड़ी गण क्या नीरो के दरबारियों को भी मात नहीं दे रहे हैं?

साहित्य में रुचि रखने वाले युवाओं से तो हम बस इतना ही कहना चाहेंगे दरबारी मुसाहिबों की यह जमात, हत्यारों के दरबार में राग मल्हार गाने वाले कुलीन कलावन्तों की यह मण्डली, जनता की संस्कृति के शिविर में विभीषणों, जयचन्दों, मीरजाफरों की भूमिका निभा रही है। ये वे लोग नहीं हैं जो **ब्रेष्ट, लू शुन, नाज़िम हिकमत, तो हू, प्रेमचन्द, निराला, मुक्तिबोध** आदि की परम्परा को आगे विस्तार दें। ये महान नाम भी इनकी लेखनी और इनके मुंह से निकलकर गन्दे हो जाते हैं। संस्कृति की दुनिया में आज जिस क्रान्तिकारी नवजागरण और प्रबोधन की आवश्यकता है, यह इनके बस का नहीं। युवा पीढ़ी को इन निठल्ले, कायर, विलासी लफ्फाजों की जिन्दगी की और इनकी नकली वामपंथी रचनाओं की पड़ताल करनी होगी। इन भितरघातियों से चेतावनी के तौर पर बस इतना ही कहा जा सकता है, "सावधान! इतिहास के अभिलेखागार में सब कुछ की इन्दराजी हो रही है।"

आज से कुछ दशकों बाद, उस समय की युवा पीढ़ी से आज की युवा पीढ़ी जब इन दिनों के बारे में बातें करेगी तो ब्रेष्ट से कुछ शब्द उधार लेकर वर्तमान सांस्कृतिक परिवेश का बयान कुछ इस तरह से करेगी:

"हम एक अंधेरे समय में सयाने हुए
जब भेड़िये राग मल्हार गा रहे थे
और हत्यारों के सेवक
साहित्य की दुनिया में
वामपंथ की भाषा बोल रहे थे।"

भिखमंगे

मनबहकी लाल

भिखमंगे आये
नवयुग का मसीहा बनकर,
लोगों को अज्ञान, अशिक्षा और निर्धनता से
मुक्ति दिलाने।
अद्भुत वक्तृता, लेखन-कौशल और
सांगठनिक क्षमता से लैस
स्वस्थ-सुदर्शन-सुसंस्कृत भिखमंगे आये
हमारी बस्ती में।
एशिया-अफ्रीका-लातिनी अमेरिका के
तमाम गरीबों के बीच
जिस तरह पहुंचे वे यानों और वाहनों पर सवार,
उसी तरह आये वे हमारे बीच।
भीख, दया, समर्पण और भय की संस्कृति के प्रचारक
पुराने मिशनरियों से वे अलग थे,
जैसे कि उनके दाता भी भिन्न थे
अपने पूर्वजों से।
अलग थे वे उन सर्वोदयी याचकों से भी
जिनके गांधीवादी जांघिये में पड़ा रहता था
(और आज भी पड़ा रहता है)
विदेशी अनुदान का नाड़ा।

•

भिखमंगे आये
अलग-अलग टोलियों में।
कुछ ने अपने पश्चिमी वैभवशाली दाताओं की
महिमा बखानी,
तो कुछ का दावा था कि वे
लुटेरों को उल्लू बनाकर
रकम ऐंठ लाये हैं
जनहित के लिए और
जनक्रान्ति की तैयारी के लिए
कुछ का कहना था कि
क्रान्ति की तैयारियों का भारी बोझ
न पड़े इस देश की गरीब जनता पर
इसलिए उन्होंने भीख से
संसाधन जुटाने का नायाब तरीका अपनाया है।
कुछ का कहना था
कि क्रान्ति अभी बहुत दूर है
इसलिए वे तब तक कुछ सुधार ही
कर लेना चाहते हैं,
संवार देना चाहते हैं
दलितों-शोषितों-वंचितों का जीवन एक हद तक
और फीस के तौर पर, बिना नेता-नौकरशाह बनने का पाप किये,
खुद भी जुटा लेना चाहते हैं
घर, गाड़ी वगैरह कुछ अदना-सी चीजें
और अगर खुद वे आ गये हैं
जनता की खातिर इस नर्क जैसे देश में
तो क्या इतना भी चाहना अनुचित है
कि उनके बेटे-बेटी शिक्षा पायें अमरीका में?
कुछ का कहना था कि
अशिक्षा ही हमारे दुर्भाग्य का मूल है
अतः वे हमें शिक्षित करने आये हैं,
स्वास्थ्य और परिवार-नियोजन के बारे में
बताने आये हैं।
कुछ का कहना था कि
हम सहकारी संस्था बनाकर उत्पादन करें
तो हल हो जायेंगी हमारी सारी दिक्कतें।
कुछ ने कहा कि
जो ट्रेड-यूनियनें न कर सकीं, वे वह कर दिखायेंगे,
राज्यसत्ता तो चांद मांगना है,
वे हमें चवन्नी-अठन्नी के लिए
नये सिरे से लड़ना सिखायेंगे।
कुछ ने कहा कि दोष
कोर्ट-कचहरी-कानून और सरकार का नहीं
हमारे गंवारपन का है

अतः वे हमें हमारे अधिकारों,
संविधान और श्रम-कानूनों के बारे में
पढ़ायेंगे
और जब हम जान जायेंगे कि
हमें सरकार से क्या मांगना है
तो हम मांगेंगे एक स्वर से
और हमारी याचना के तुमुलनाद
से जागकर, डरकर,
सरकार हमें दे देगी वह सब कुछ
जो हम चाहेंगे।

●

भिखमंगों ने हमें लताड़ा
कि यदि सरकार अपनी जिम्मेदारियां
पूरी नहीं करती
तो हम उसका मुंह क्यों जोहते हैं?
यदि वह नौकरियां नहीं देती
तो हम खुद क्यों नहीं कर लेते
कुछ काम-धाम?
यदि वह सभी कारखानों को
पूंजीपतियों को दे रही है
और पूंजीपति हमें रोजगार नहीं दे रहे
तो हम स्वयं मिलकर क्यों नहीं
शुरू कर लेते कोई उद्यम
और फिर भी नहीं चलता काम
तो कम क्यों नहीं कर लेते अपनी जरूरतें?
बन्द क्यों नहीं कर देते ऊपर की ओर देखना?
चरम पर्यावरणवादी बन चले क्यों नहीं जाते
प्रकृति की गोद में निवास करने?

●

भिखमंगों ने बेरोजगार युवाओं से
कहा–"तुम हमारे पास आओ,
हम तुम्हें जनता की सेवा करना सिखायेंगे,
वेतन कम देंगे
पर गुजारा-भत्ता से बेहतर होगा
और उसकी भरपाई के लिए
"जनता के आदमी" का ओहदा दिलायेंगे,
स्थायी नौकरी न सही,
बिना किसी जोखिम के
क्रान्तिकारी बनायेंगे,
मजबूरी के त्याग का वाजिब मोल दिलायेंगे।"
"रिटायर्ड, निराश, थके हुए क्रान्तिकारियो,
आओ, हम तुम्हें स्वर्ग का रास्ता बतायेंगे।
वामपंथी विद्वानो, आओ
आओ 'सबआल्टर्न, वालो,
आओ तमाम उत्तर मार्क्सवादियो, उत्तर नारीवादियो वगैरह-वगैरह
आओ, अपने ज्ञान और अनुभव से
एन.जी.ओ. दर्शन के नये-नये शस्त्र और शास्त्र रचो,"
आह्वान किया भिखमंगों ने
और जुट गये दाता-एजेंसियों के लिए
नई रिपोर्ट तैयार करने में।

●

भिखमंगों ने भीख को नई गरिमा दी,
भूमण्डलीकरण के दौर में
उसे अन्तरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा दी।
भिखमंगों ने क्रान्ति और बदलाव की
नई परिभाषाएं रचीं।
भिखमंगों ने कहा–"भूल जाओ
'पैबन्द और कुर्ते का गीत' *
वह पुराना पड़ चुका है।
हम मांगकर लाते रहेंगे तुम्हारे लिए पैबन्द
तुम उन्हें सहेजना,
उन्हें जोड़कर एक दिन तैयार हो जायेगा
एक पूरा का पूरा कुर्ता।
भूख से तड़पते हुए मर जाओगे
यदि समूची रोटी चाहोगे।
हम तुम्हारे लिए मांगकर लाते रहेंगे
रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े,
तुम उन्हें खाते जाओ
एक दिन तुम्हारे पेट में होगी
एक साबुत रोटी।
मत करो बातें सारे कारखाने
और कोयला और खनिज और
मुल्क की हुकूमत पर कब्जे की,
ऐसी कोशिशें असफल हो चुकीं।"
हम पूछते हैं व्यग्र होकर,
"आखिर कब तक चलेगा
इस तरह"
वह तर्जनी उठाकर हमें रोकते हैं,
"हम एक अर्जी लिख रहे हैं।"
फिर वे एक रिपोर्ट लिखते हैं,
फिर चिन्तन करते हैं,
फिर दौरा करने किसी और दिशा में
चल देते हैं।
हम पाते हैं, भिखमंगे नहीं वे
अपहरणकर्ता हैं
बदलाव के विचारों के, स्वप्नों और आशाओं के।
आत्मा की ऊष्मा के खिलाफ सतत सक्रिय
शीत की लहर हैं ये भिखमंगे। ▣

नेपाली अवाम की आवाज को कुचला नहीं जा सकता

ललित

हमारे पड़ोसी देश नेपाल की जनता शाही सेना के बूटों की धमक और आधी रात की दस्तकों के साये तले जीने को मजबूर कर दी गयी है। आपातकाल की बेड़ियों से हिमालय के दक्षिणी ढलान में मुक्ति के लिये उठे कदमों को रोकने की

नापाक साजिशें रची गयी हैं। हिन्दुस्तान का छात्र-नौजवान—जो आपातकाल शब्द के अर्थ से वाकिफ है—नेपाल में घट रही घटनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। जनतांत्रिक अधिकारों का अपहरण किसी भी न्यायप्रिय व्यक्ति के लिये शोचनीय है।

26 नवम्बर 2001 को नेपाल के महाराजा ने देश में आपातकाल की घोषणा कर दी। इसके साथ ही उन्होंने 'टाडो' नाम से आतंकवाद विरोधी अध्यादेश भी जारी कर दिया। कहा यह जा रहा है कि 'माओवादी आतंक' से देश को खतरा है। ये वही माओवादी हैं जिन्हें 26 नवम्बर से पहले माओवादी विद्रोही कहा जा रहा था और जिनको एक राजनीतिक शक्ति मानते हुए सरकार ने अगस्त से नवम्बर माह तक लगभग तीन महीने वार्ताओं के कई दौर चलाये। आज उन्हें आतंकवादी कहा जा रहा है।

माओवादियों की तीन मुख्य मांगें हैं: गणराज्य की स्थापना, संविधान सभा का चुनाव और अंतरिम सरकार का गठन। कोई भी व्यक्ति, जिसकी लोकतांत्रिक मूल्यों में आस्था है, जानता है कि किसी भी जनतंत्र के लिये ये बुनियादी मांगें हैं।

लेकिन, नेपाल के सत्ताधारियों ने इन मांगों को भी ठुकरा दिया। जनाकांक्षा का गला घोंटने के लिए फौज का सहारा लिया गया।

यह किसी देश की जनता को तय करना होता है कि वह अपने देश में कैसी शासन व्यवस्था चाहती है, उसके राज-काज-समाज का पूरा तंत्र कैसा हो। यह कोई राजा या उसका मुदर्रिस सजावटी प्रधानमंत्री नहीं तय कर सकता कि राजशाही और दिखावटी लोकतंत्र के गठबन्धन का राज ही ब्रह्मा का विधान है। इस रूप में देखें तो किसी भी देश को भी यह हक नहीं है कि नेपाल के आंतरिक मामलों में दखल दे। इसके साथ ही, यह हर इंसाफपसंद जन का फर्ज है कि दुनिया के किसी भी कोने में यदि कोई स्वतंत्रता-समानता के लिए न्यायपूर्ण संघर्ष चल रहा है तो वह उसकी पुरजोर तरफदारी करे। प्रसंगवश यह याद करना होगा कि 1947 से पहले भारत की आजादी के आन्दोलन के समर्थन में ब्रिटेन के छात्रों-नौजवानों ने सड़कों पर उतरकर जुलूस-प्रदर्शन आयोजित किये थे।

नेपाल में चल रहे आन्दोलन से नेपाल का सत्ताधारी वर्ग ही नहीं, साम्राज्यवाद भी चिन्तित है। अफगानिस्तान एवं अन्य क्षेत्रीय हालात से यह देखा जा सकता है कि आज अमेरिका दक्षिण एशिया में अपने लूट के तंत्र को विकसित करने की सुनियोजित चालें चल रहा है। इस क्षेत्र में कोई भी जनान्दोलन उसे बर्दाश्त नहीं। नेपाल पर उसके बयानों से इसे समझा जा सकता है। नेपाल सहित तमाम शासक वर्गों के बयानों को देखें तो उनमें इतनी समानता दिखेगी जैसे एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हों। नेपाल के ब्रधनमंत्री शेर बहादुर देउबा ने माओवादी आन्दोलन के सम्बन्ध में अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि एक फेल विचारधारा को 'अफोर्ड' नहीं किया जा सकता । दरअसल, भूमण्डलीकरण के इस दौर में देउबा जी और उनके राजा जी ही क्या, कोई भी जनविरोधी शासक किसी भी जनान्दोलन को 'अफोर्ड' नहीं कर सकता।

नेपाल एक ऐसा पिछड़ा देश है जहां 70 फीसदी से ज्यादा लोग गरीबी रेखा से नीचे का जीवन जी रहे हैं। यहां की 80-85 फीसदी जनता ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। भौगोलिक दृटि से नेपाल चारों ओर से जमीन से घिरा क्षेत्र है, जो पूर्व, पश्चिम और दक्षिण-तीन ओर से भारत से घिरा है। उत्तर में चीन स्थित है। नेपाल के पहाड़ी क्षेत्रों में ऐसे-ऐसे दुर्गम स्थान हैं जहां गरीब जनता रहती है, और जहां पहुंचने के लिये कोई यातायात की सुविधा नहीं, कई दिन पैदल चलकर आप वहां पहुंच सकते हैं। नेपाल का दक्षिणी हिस्सा मैदानी क्षेत्र है, यह पूरब से पश्चिम तक फैला तराई इलाका है जहां बड़े-बड़े जंगल हैं और खेती योग्य जमीन है। नेपाल प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न क्षेत्र है। कहा जा सकता है कि नेपाल की गरीबी प्रकृति प्रदत्त नहीं बल्कि निरंकुश राजशाही और सामंती महाप्रभुओं के साम्राज्यवाद के साथ मिलकर की जा रही लूट के कारण पैदा हुई है। नेपाल की मेहनतक़ा जनता पर राज़ाही और स्थानीय सामंतों के बर्बर शोषण-दमन-अत्याचार की एक लम्बी दास्तान है। इसके साथ ही साम्राज्यवादियों की नजर भी इस पर हमेा बनी रही। एक समय का समृद्ध-आत्मनिर्भर देश आज एक गरीब देश के रूप में जाना जाता है। नेपाली कहते ही हमारे सामने एक "वफादार" सेवक का चित्र आता है—कुली, मेट, चौकीदार, नौकर, सैनिक वाला चित्र। माओवादी नेपाली मेहनतकश जनता के मुक्ति के स्वप्नों को साकार करना चाहते हैं, यही कारण है कि उनका नेपाल में व्यापक जनाधार है। इस तथ्य को न चाहते हुए भी वहां की सरकार गाहे-बगाहे स्वीकार करती है। माओवादियों की सफलता या असफलता का प्रश्न दीगर है, लेकिन यह बात पक्के तौर पर कही जा सकती है कि नेपाली जनता की इंसाफ, हक और आजादी के सपनों को अब कोई भी 'आपातकाल' नहीं कुचल सकता।

नेपाली जनता ने अतीत में भी शानदार लड़ाइयां लड़ी हैं। सन् 1815 में ब्रिटिश भारत के साथ हुए संघर्ष में नेपाली जनता ने अंग्रजों का बहादुरी के साथ मुकाबला किया था। लेकिन तत्कालीन राजशाही के अंग्रेजों के

सामने घुटने टेक देने के कारण नेपाल को ब्रिटिश भारत के साथ सुगौली संधि के लिए मजबूर होना पड़ा। नेपाल का एक बड़ा हिस्सा ब्रिटिश भारत ने अपने कब्जे में ले लिया, 1846 में राणाशाही कायम हुई। इस शासन के मुखिया जंगबहादुर राणा को तो अंग्रजों का पिट्ठू माना जाता है।

सुगौली संधि के बाद से ही आत्मनिर्भर देश नेपाल एक अर्द्धउपनिवेश की स्थिति में आ गया। उसके आत्मनिर्भर स्वतंत्र विकास का रास्ता अवरुद्ध हो गया। इस संधि के बाद से भारतीय कारखानों में बना माल नेपाल के बाजार में पहुंचने लगा। इसके चलते नेपाल में पूंजीवाद का स्वाभाविक विकास भी बाधित हुआ। सन् 1947 में भारत को अंग्रजों की दासता से मुक्ति मिली लेकिन, जैसा कि आज साफ हो चुका है कि यह अधूरी आजादी थी। आजादी को हिन्दुस्तान का पूंजीपति वर्ग ले उड़ा। मुनाफाखोरों की मुनाफे की हवस के कारण आज जहां हिन्दुस्तान की जनता गरीबी-भुखमरी-बेकारी के नरक में जीने को अभिशप्त है, वहीं नेपाली जनता पर भी इन मुनाफाखोरों की शनिछाया बनी रही। एक अध्ययन के अनुसार नेपाल के 80 फीसदी उद्योग और वाणिज्य पर भारतीय पूंजीपतियों अथवा भारतीय मूल के पूंजीपतियों का कब्जा है। यही नहीं, जब से भारतीय पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद का जूनियर पार्टनर बनना शुरू कर लिया है, तब से साम्राज्यवाद भारतीय पूंजीपति वर्ग के कंधे पर चढ़कर नेपाल के बाजार पर कब्जा कर रहा है। इस लूट में नेपाल का शासकवर्ग भी साझीदार है अपनी हैसियत के अनुसार। इस लूट की चक्की में नेपाली जनता बरयों से पिस रही है। यह अकारण ही नहीं है कि नेपाली जनता जब आन्दोलित होती है, तो उसके अन्य नारों के साथ 'भारतीय विस्तारवाद मुर्दाबाद' का नारा भी प्रमुख होता है। नेपाली जनमानस में कमोबेश भारतीय पूंजीपतियों -भारतीय शासकवर्ग की वही छवि है, जैसी गुलामी के दिनों में भारतीय मानस के बीच अंग्रेज लुटेरों की छवि थी। दूसरी तरफ नेपाली जनता का भारतीय जनता के साथ

(पृष्ठ 27 पर जारी)

अर्जेण्टीना :
मुद्रा कोष-विश्व बैंक की नीतियों से आर्थिक-राजनीतिक संकट गहराया

शिशिर

अर्जेण्टीना विश्व के आर्थिक इतिहास में पहला ऐसा सम्प्रभु राष्ट्र बन गया जिसने अपने आप को 'दीवालिया' घोषित कर दिया। अर्जेण्टीना ने नये साल का यह 'शानदार' स्वागत मुद्रा कोष की सहायता से किया। हालांकि लातिनी अमेरिकी देशों में इस तरह के आर्थिक ध्वंस का रिवाज नया नहीं है (आई.एम.एफ. के मॉडलों, मेक्सिको और ब्राजील का पतन), लेकिन अर्जेण्टीना ने जो किया है, वह एक मिसाल है। अर्जेण्टीना की आर्थिक तबाही का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि मुद्रा कोष के भक्त वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा तक ने कहा कि अर्जेण्टीना की मौजूदा दशा देखकर 'हड्डियों में झुरझुरी हो रही है।

यह बात काबिले-गौर है कि अर्जेण्टीना अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा बैंक के उत्तम मॉडलों और सबसे वफादार ग्राहकों में से एक है। जो अर्जेण्टीना चार-पांच साल पहले लातिन अमेरिका के सबसे अमीर देशों में से था, आज वह दिवालिया हो चुका है। उसकी गिनती दुनिया के पांच सबसे बड़े कर्जदारों में होती है। उसके सर पर 155 अरब डॉलर का कर्ज है, जिसका ब्याज भी चुकाने के काबिल नहीं। दिसम्बर 2001 से अर्जेण्टीना की तबाही की शुरुआत हुई। तब से वहां रोज 2000 लोग गरीबी रेखा से नीचे चले जा रहे हैं। आखिरी खबर मिलने तक तीन करोड़ सत्तर लाख की आबादी वाले अर्जेण्टीना की लगभग 35 प्रतिशत से ज्यादा आबादी गरीबी रेखा के नीचे जा चुकी है। बेरोजगारी की दर 35 से 40 प्रतिशत के बीच जा पहुंची है। जेम्स पेत्रास नामक एक लातिन अमेरिकी बुद्धिजीवी के अनुसार कुछेक इलाकों में कुल श्रमशक्ति का 60 प्रतिशत हिस्सा बेरोजगार है। पिछले एक महीने में चार राष्ट्रपतियों का बदला जाना एक आर्थिक संकट का राजनीतिक अनुवाद ही था, जो अस्थिरता के रूप में सामने आया। मौजूदा राष्ट्रपति एदुआर्दो दुआल्दे के भी ज्यादा टिकने की उम्मीद बेकार है। इसकी वजह यह है कि वह भी मुद्रा कोष और विश्वबैंक के इशारों पर नाचने वाली कठपुतली है और जनता के सब्र का प्याला छलक चुका है। अर्जेण्टीना की राजधानी ब्यूनस आर्यर्स में लोगों को आम रोज-ब-रोज की जरूरत के सामान बाजारों में लूटते देखा जा सकता है। और भी हैरानी की बात यह है कि लोगों में न सिर्फ गरीब-बदहाल लोग हैं बल्कि मध्यवर्ग के लोग भी हैं। लोग अब विश्वबैंक-मुद्रा कोष के ढांचागत समायोजन की हकीकत को समझ रहे हैं। उनके सामने मेक्सिको का उदाहरण भी है, जो ढांचागत समायोजन द्वारा ठिकाने लगाया जा चुका है। दिसम्बर में जनता ने फर्नांदो द ला रुआ की सरकार को अस्वीकार कर दिया साथ ही आई.एम.एफ. के दलाल वित्त मंत्री दोमिंगो कावालो के "किफायतशारी" के उपायों को लात मार दी।

अर्जेन्टीना में मुद्रा कोष की घुसपैठ 1980 के दशक की शुरुआत में हुई जब अर्जेन्टीना अपने कर्जे चुकाने में असमर्थ हो गया। 1978 में अर्जेन्टीना पर कुल विदेशी कर्ज आठ अरब डालर था जो 2001 तक 155 अरब डालर हो गया, यानी 23 वर्षों में 19 गुना वृद्धि। विदेशी कर्ज की जांच के लिए जो न्यायिक प्राधिकरण बैठा, उसने तत्कालीन केन्द्रीय बैंक गवर्नर दोमिंगो कावालो को हेराफेरी के लिए दोषी ठहराया था। 80 के दशक के पूर्वार्द्ध में जिन देशों को मुद्रा कोष के आर्थिक कारस्तानियों की

प्रयोगशाला बनना पड़ा उसमें अर्जेन्टीना के अतिरिक्त, ब्राजील, मेक्सिको, पेरू आदि भी शामिल थे। 1980 से 1990 के बीच में जहां अर्जेण्टीना की जी.डी.पी. की वृद्धि दर −0.7 रही वहीं मुद्रास्फीति की दर 583.8 प्रतिशत तक पहुंच गयी। इस समस्या के "निदान" के तौर पर मुद्रा कोष ने तत्कालीन राष्ट्रपति कार्लोस मेनेम पर दबाव डालकर अपने चहेते दोमिंगो कावाले को वित्त मंत्री बनवाया। यह जनाब वही हैं जिन्हें न्यायिक प्राधिकरण ने हेराफेरी और विदेशी कर्जे की लूट में दोषी पाया था। अर्जेण्टीना के बरबाद होने से पहले तक उन्हें तीसरी दुनिया के देशों के वित्त मंत्रियों के सामने 'मॉडल की तरह पेश किया जाता था।

2001 में कावालो ने मुद्रा कोष-विश्व बैंक के समायोजन कार्यक्रम को लागू किया। इसके अतिरिक्त उसने फिक्स्ड' विनिमय व्यवस्था लागू की जिसके निहितार्थ यह थे कि अर्जेण्टीना विदेशी निवेशकों, अमेरिकी केन्द्रीय बैंक का गुलाम बनने को तैयार है। इस व्यवस्था में एक पेसो (अर्जेन्टीनियन मुद्रा) का विनिमय एक डॉलर से होता था। इसका मतलब था अर्जेण्टीना की अर्थव्यवस्था के पूर्ण डालरीकरण की मंजूरी।

इस व्यवस्था के लागू होने के बाद मेनेम-कावालो की जोड़ी को एक पेसो बराबर एक डालर की विनिमय दर को बरकरार रखना था। इसके लिए उन्हें वित्तीय घाटे को घटाना था। इसके कारण उन्होंने निजीकरण का अभियान छेड़ दिया। भारत की तरह वहां भी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को औने-पौने दामों में विदेशियों के हवाले करने का अभियान चला, सरकारी कर्मचारियों की संख्या में भारी कटौती हुई। किफायतशारी के नाम पर छंटनी, ले-ऑफ, वेतन व पेंशन में कटौती जैसे फैसले जनता पर थोप दिये गये। मुद्रा की कीमत में वृद्धि से निपटने के लिए मजदूरी में भारी कटौती की गयी। इस काम को अंजाम देने के लिए घरेलू मांग में कमी और रोजगार में भी कटौती की गयी।

मांग में कमी, वेतन में कटौती आर्थिक मन्दी में फलीभूत होना स्वाभाविक था। और यहीं से अर्जेण्टीनी अर्थव्यवस्था की दीवार दरकना शुरू कर देती है, और चार-पांच साल में हालत यह हो जाती है कि आधुनिक विश्व इतिहास में पहली बार किसी देश का राष्ट्रपति अपने देश को दीवालिया घोषित करने को बाध्य हो जाता है।

अर्जेण्टीनी अर्थव्यवस्था का पतन आज तमाम मुद्दों पर सोचने को हमें बाध्य करता है। "इतिहास के अंत", "पूंजीवाद की विजय", "समाजवाद की पराजय" के विक्षिप्त शोर के बीच एक के बाद एक मुद्रा कोष-विश्व बैंक के मॉडलों ओर 'एशियन टाइगर्स' का पतन हमें इन चीजों पर सोचने को मजबूर कर देता है। बारी-बारी से मेक्सिको, ब्राजील, अर्जेण्टीना, थाईलैण्ड, ताइवान आदि देशों की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का ताश के पत्तों की तरह भरभरा कर ढह जाना स्पष्ट रूप से यह दिखलाता है कि पूंजीवाद मानवता के विकास की अंतिम मंजिल नहीं है। यह मानव समाज इस कदर विकल्पहीन नहीं हो सकता कि हम एक विक्षिप्त, मानवद्रोही व्यवस्था की जगह एक न्यायपूर्ण, समानतापूर्ण व्यवस्था नहीं ला सकते। ये घटनायें जिनका बयान हम ऊपर कर आये हैं, विश्व-पूंजीवाद के एक लाइलाज रोग की ओर इशारा करती हैं। यह रोग है—मंदी। यह चीज सभी पूंजीपतियों के स्वप्नों में खलनायक का पार्ट अदा करती है। बाजार, सस्ते श्रम और मुनाफे की हवस उनके तावूत में कील का काम करती है। "इतिहास के अंत", "मानवता के अंत" की बकवासों के बीच से एक विकल्प की आवाज को उठाना आज हर ईमानदार, इंसाफपसन्द, संवेदनशील और बहादुर नौजवान का कर्तव्य है। यह विकल्प क्या हो यह भी हमें ही सोचना है। हमारे पास विकल्प देने वालों की विरासत भी है और इतिहास भी। शहीदे आजम भगतसिंह जैसे व्यक्तित्व विकल्प तैयार करने की राह में हमेशा मशाल बनके हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। देर सिर्फ हमारे सोचने और सक्रिय होने की है, क्योंकि अर्जेण्टीना की कहानी भारत की कहानी बन जाये तो बहुत हैरानी की बात न होगी।

●

नेपाली अवाम की आवाज को कुचला नहीं जा सकता

(पृष्ठ 26 से आगे)

आत्मीयता का वह रिश्ता है कि जब भारत में आपातकाल लागू था, तो यहां से भागकर छिपने के लिये जो भारतीय नेता नेपाल गये थे उन्हें नेपाली जनता ने अपना रक्षा कवच प्रदान किया था। भारत और नेपाल की मेहनतकश जनता के आपसी प्रगाढ़ रिश्तों को तो सभी स्वीकारते हैं।

भारत के इंसाफपसंद लोगों को आज चाहिये कि संकट के इस मौके पर नेपाल की जनता के साथ एकजुटता प्रदर्शित करें। गणराज्य की स्थापना, संविधान सभा का चुनाव और अंतरिम सरकार का गठन कोई आतंकवादी मांगें नहीं हैं, बल्कि एक सभ्य समाज, एक समतामूलक समाज की चाह रखने वाली शांतिप्रिय जनता की मांगें हैं। इसलिए, इन मांगों पर माओवादियों के नेतृत्व में नेपाल में चल रहे जनसंघर्ष के दमन के खिलाफ आवाज उठाना हर इंसाफपसंद, जनतांत्रिक मूल्यों में आस्था रखने वाले लोगों का दायित्व है। मीडिया के जरिये भारतीय शासक वर्ग इस संघर्ष की जो तस्वीर पेश कर रहा है, उसका सच्चाइयों से कोई लेना-देना नहीं है। साथ ही, तमाम "राष्ट्रीय" अखबारों में भरत सरकार द्वारा नेपाल के माओवादी आन्दोलन को कुचलने के लिये सैनिक साजो-सामान भेजने की जो खबरें आयी हैं, वे भी चिन्तनीय हैं। जिस तरह भारत के अन्दरूनी मामलों में कोई बाहरी दखल नहीं बर्दाश्त की जानी चाहिये, उसी तरह नेपाल के अन्दरूनी मामलों में दखल देने का पुरजोर विरोध किया जाना चाहिये। सरकार की गलत नीति का भी समर्थन करना राष्ट्रभक्ति नहीं है, इसलिए, सभी इंसाफपसंद, जनतंत्रप्रिय छात्रों-युवाओं-आम नागरिकों को भारतीय शासकों के साथ खड़े होने के बजाय नेपाल की संघर्षरत जनता के साथ खड़े होना चाहिए।

●

भविष्य से भयाक्रांत शासक वर्ग का नया हथियार – 'पोटो'

कविता

पोटो का दैत्य नये रंग-रोगन के साथ हमारे सामने है! मामूली संशोधनों के बाद आतंकवाद निरोधक अध्यादेश "आतंकवाद" का सफाया करने आ चुका है। जिस तरह से आपातकाल के काले अंधेरे दौर में "आन्तरिक सुरक्षा" पर खतरे के नाम पर कुख्यात 'मीसा' लागू हुआ, बाद में 'रासुका' आया, आंतकवाद से निपटने के लिए टाडा बनाया गया, आज ऐसे ही जनतंत्र निषेधी काले कानूनों का चरम है – 'पोटो'।

लुटेरे हुक्ममरानों की जंगी मुहिम, जो कि आंतकवाद को कुचलने के नाम पर पूरी दुनिया के जनता के खिलाफ चलाई जा रही है, में हिन्दुस्तान का शासक वर्ग भी बढ़ चढ़कर हिस्सेदारी कर रहा है। दरअसल, जनविरोधी आर्थिक नीतियों के कारण समाज में हो रही तबाही-बर्बादी के कारण जनअसंतोष का लावा सतह के नीचे खदबदा रहा है। पूरा समाज ज्वालामुखी के मुहाने पर खड़ा है। सत्ताधारी वर्ग इस खतरे को भांप रहा है। साम्राज्वाद के सामने घुटने टेक चुका हमारे देश का जन विमुख शासक वर्ग भविष्य के इसी खतरे से निपटने के लिए दमन के हरबे हथियारों से खुद को लैस कर लेना चाहता है। पोटो एक ऐसा ही हथियार है।

पोटो ने जालिम पुलिस मशीनरी को किसी भी नागरिक की गलत मंशा का पता लगा लेने का वरदान दे दिया है(भले ही उस नागरिक को अपनी गलत मंशा स्वयं न पता हो)। पोटो के प्रावधानों के तहत ऐसे किसी भी व्यक्ति को अपराधी घोषित किया जा सकता है जिसके बारे में पुलिस को यह पता लग जाये कि उसकी मंशा भारत की एकता, अखण्डता, सुरक्षा या सम्पभुता को खतरा पहुंचाना अथवा जनता के किसी भी तबके के भीतर आंतक पैदा करना है।

यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि सरकार के किसी भी जनविरोधी कदम के खिलाफ पर्चा बांटना, सभा करना, जुलूस-रैली निकालना, लेख लिखना, गीत गाना, या किसी खास समय पर खास जगह पर मौजूद रहना ही पोटो के दायरे में लाये जाने के लिए काफी होगा। पोटो जारी होने के पहले ही अफगानिस्तान पर अमेरिकी हमले के विरोध में दिल्ली में पर्चा बांट रहे छह छात्रों को देश द्रोह के आरोप में गिरफ्तार करके सरकार ने साफ तौर पर सरकार ने अपनी मंशा का सुराग दे दिया था।

पोटो लागू करने के पीछे आतंकवाद तो बहाना है, असली निशाना तो जनता है। आतंकवाद न 'टाडा' से खत्म हुआ था और न 'पोटो' से होगा। ओसामा बिन लादेन और भिण्डरावाले को पैदा करने वाली सत्ताओं की मंशा को समझना बहुत जरूरी है। सरकार का यह कहना कि पोटो के तहत निरपराध लोगों, अल्पसंख्यकों, पत्रकारों, वकीलों, शिक्षको, कलाकारों, जनतांत्रिक अधिकार संगठनों के कार्यकर्त्ताओं के खिलाफ कार्रवाई नहीं होगी, मात्र एक छलावा है। संशोधित पोटो के प्रारूप से भी यह साफ हो जाता है। यह एक जलता हुआ सच है कि पूर्ववर्ती कानून टाडा के तहत देश भर में जेलों में ठूंसे गये 76,000 लोगों में से महज एक प्रतिशत ही लोगों को सजा योग्य पाया गया। हजारों बेगुनाह जेलों में सड़ते रहे। टाडा खत्म होने के बाद आज भी करीब पन्द्रह हजार लोग सलाखों के पीछे कैद हैं।

जिन लोगों को सलाखों के पीछे होना चाहिए था, वे सत्तासुख भोग रहे हैं। जो देश को बेच रहे है, विदेशी लुटेरों के साथ

दिशा छात्र संगठन और अन्य संगठनों के कार्यकर्ता दिल्ली में पोटो के खिलाफ प्रदर्शन करते हुए

मिलकर जनता को लूट रहे हैं, बड़े माफिया-तस्कर-घोटालेबाज सत्ता के गलियारों में घूम रहे हैं। कफन-खसोट मुर्दाखोर साम्प्रदायिक उन्माद पैदा करने वाले, फासिस्ट गुण्डा गिरोह, आर्थिक अपराधी, काले धन की समान्तर सत्ता चलाने वाले, मौत के सौदागर क्या इन पर भी कोई पोटो लागू होगा। पोटो दरअसल इनके खिलाफ उठने वाली हर अवाज को कुचलने के लिए बना है।

अन्याय और लूट पर टिका निजाम जब तक कायम है, जब तक सरकारी आतंकवाद कहर ढा रहा है, आतंकवाद की नयी-नयी किस्में पैदा होती रहेगी, क्रांतिकारी शक्तियां जब तक कमजोर रहेगी, तब तक हताश-निराश-परेशान नौजवानों के एक हिस्से को आतंकवाद अपनी ओर खीचता रहेगा। आतंकवाद किसी भी समस्या का समाधान नहीं है, उसकी नियति अंधी गली में जाकर दम तोड़ देना है। आतंकवादी गिरोह नहीं जनता के इंकलाबी जनसंगठन जनता को मुक्ति की राह दिखाते हैं। इसीलिए लुटेरी जालिम सत्ताओं के लिए आतंकवाद नहीं, बल्कि जनपक्षधर संघर्षशील ताकतें चुनैती होती हैं। आतंकवाद तो एक अच्छा बहाना है, जिसकी आड़ में जनपक्षधर, इंसाफपसंद लोगों, संगठनों पर निशाना साधा जाता है। पोटो के प्रावधानों को देखकर इस बात को अच्छी तरह समझा जा सकता है। पोटो के पीछे इसी 'मंशा' के कारण पोटो के विरोध में जनता के बीच से अवाजें उठीं।

पोटो पर संसद में पक्ष-विपक्ष की नूराकुश्ती मात्र एक दिखावा है। पोटो के खिलाफ विपक्ष की चीख-पुकार महज धोखे की टट्टी है। आज विपक्ष में बैठी कांग्रेस जो आपातकाल के हत्यारे दिनों से लेकर टाडा तक का सफर तय करके सयानी बनी हुई है, का विरोध नकली विरोध है। दिल्ली में कांग्रेस की ही सरकार है जिसने 'मोक्का' लागू किया है। मोक्का(महाराष्ट्र कन्ट्रोल आफ आर्गनाइज क्राइम एक्ट) पहले से ही महाराष्ट्र में लागू किया जा चुका है। नकली वामपंथियों के नपुंसक विरोध और उनकी बेशर्मी का क्या कहा जाए, ये केन्द्र में 'जनपक्षधर' हो जाते है और अपने राज्य में जाते ही गिरगिट की तरह रंग बदल लेते हैं। पश्चिम बंगाल में 'पोका' कानून लाने के लिए एक असफल प्रयास किया भी जा चुका है। जिस चुनावबाज पार्टी को देखिये, वह इस दोगलेपन में उस्ताद है। और आज भाजपा की अगुआई वाली गठबंधन सरकार इन सबकी सिरमौर बनी हुई है।

अपने को "राष्ट्रवादी" "स्वदेशी" कहते नहीं अघाते "राष्ट्रभक्त" अमेरिका की चरण वंदना में इतने मशगूल हैं और वे भूल रहे हैं कि हर देश का अपना एक स्वाभिमान होता है। देश किसी गिरोह की बपौती नहीं है, न वह कोई चरागाह है जहां भेड़ों का रेवड़ रहता है। हिन्दुस्तान की तस्वीर और तकदीर का फैसला करने वाली सरकारों को याद रखना चाहिए कि अमेरिका और उसके लगुओं-भगुओं के साथ उनकी सांठ-गांठ को इस देश को प्यार करने वाली मेहनतकश जनता बर्दाश्त नहीं करेगी। भले ही आज दुनिया का सबसे बड़ा आतंकवादी देश शांति का मसीहा बना हुआ हो और उसका भारत में राजदूत यह बयान दे रहा हो कि अमेरिका ने आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई का नया दौर तय किया है। अमेरिका ने पहले चरण में अलकायदा और अफगानिस्तान पर ध्यान दिया और अब भारत में आतंकवाद की समस्या को देखेगा।

अमेरिकी राजदूत राबर्ट ब्लैकविल के इस ताजा बयान पर यही कहा जा सकता है कि साम्राज्यवादियों की तमाम देशों के निजी मामलों में हस्तक्षेप के पीछे की कुत्सित मंशाओं को जनता ने पहले भी धूल चटाई है। और आज भी लाख पोटो होने के बावजूद, जनता देशी विदेशी लुटेरों के नापाक गठबंधन की तीन तिकड़मों, साजिशों को धूल चटायेगी ही, चाहे इसमें कुछ वक्त लगे। इसका अपवाद आज भी नहीं होगा।

शासक वर्ग भय के मनोविज्ञान और दमन के हथियारों के सहारे बहुत दिनों तक अपना वजूद कायम नहीं रख सकता। दरअसल, यह शासक वर्गो की मजबूरी के बजाय उसकी कमजोरी का ही सूचक है। आतंकवाद से निपटने के नाम पर शासक वर्गो के आतंकवाद और भय के मनोज्ञिान को चीरने की जिम्मेदारी यूं तो समाज के सभी इन्साफपसंद, जनतंत्रप्रिय लोगों की है, पर नौजवानों की यह जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाने के लिए सबसे आगे आना चाहिए।

●

जिस धरती पर हर अगले मिनट एक बच्चा भूख या बीमारी से मरता हो, वहां पर शासक वर्ग की दृष्टि से चीजों को समझने की आदत डाली जाती है। लोगों की इस दशा को एक स्वाभाविक दशा समझने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। लोग व्यवस्था को देशभक्ति से जोड़ लेते हैं और इस तरह से व्यवस्था का विरोधी एक देशद्रोही अथवा विदेशी एजेण्ट बन जाता है। जंगल के कानूनों को पवित्र रूप दे दिया जाता है ताकि पराजित लोग अपनी हालत को अपनी नियति समझ बैठें।

– एदुआर्दो खालीआनो (अर्जेण्टीना के लेखक)

दायित्वबोध

उन बुद्धिजीवियों की पत्रिका जिन्होंने जनता का पक्ष चुना है

सम्पादकीय कार्यालय :
81, समाचार अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेज-एक
दिल्ली-110091
फोन : 011-2711136
email :
dayitvabodh@rediffmail.com

एक प्रति : 15 रुपए
वार्षिक : 60 रुपए
(डाक व्यय सहित 72 रुपये)
आजीवन : 1000 रुपये

युवा इटली

मक्सिम गोर्की

मखमली कपड़े पहने हुए रात दबे पांव मैदान से नगर में प्रवेश कर रही है। नगर सुनहरी, जगमगाती बत्तियों से उसका स्वागत कर रहा है। दो नारियां और एक युवक भी मानो रात का अभिनन्दन करते हुए मैदान में चले जा रहे हैं। उनके पीछे-पीछे दिन भर की दौड़-धूप से थका-हारा हुआ जिन्दगी का धीमा-धीमा शोर सुनायी दे रहा है।

रोम के अनेक कबीलों के गुलामों द्वारा बनायी गयी प्राचीन सड़क की काली-काली टाइलों पर तीन व्यक्तियों के पैरों की धीमी-धीमी आहट सुनायी दे रही है। प्यारी खामोशी में एक नारी की स्नेहमयी और दृढ़ आवाज सुनाई देती है :

"लोगों के साथ तुम्हें कड़ाई से पेश नहीं आना चाहिये..."

"क्या तुमने मुझमें कभी कोई ऐसी बात देखी है, मां?" युवक ने पूछा।

"तुम बहुत ही जोश से बहस करते हो..."

"अपनी सचाई को भी बहुत जोश से प्यार करता हूं..."

युवक के बायीं ओर पत्थरों पर खड़ाऊंओं को घसीटती और सिर को ऊपर उठाकर आकाश को ऐसे ताकती हुई, मानो अंधी हो, एक युवती चल रही है। आकाश में सन्ध्या का बड़ा-सा सितारा चमक रहा है, उसके नीचे डूबते सूरज की हल्की-सी लाल धारी है और इस लाली की पृष्ठभूमि में चिनार के दो पेड़ बिना जली मशालों जैसे लग रहे हैं।

"समाजवादियों को अक्सर जेलों में बन्द

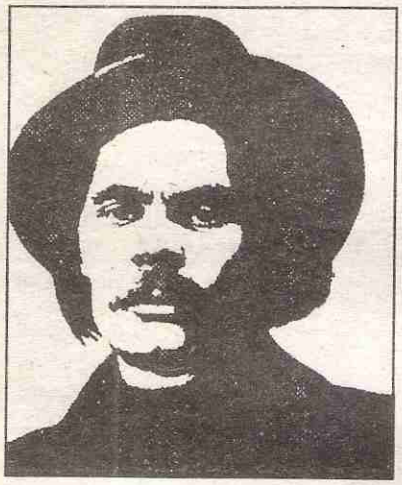

कर दिया जाता है" मां ने आह भरकर कहा।

"हमेशा ऐसा ही नहीं होगा। आखिर इससे कोई फायदा तो होता नहीं..." बेटे ने शान्तिपूर्वक जवाब दिया।

"सो तो ठीक है, लेकिन फिलहाल..."

"न तो ऐसी ताकत आज है और न कभी होगी जो दुनिया के जवान दिल को कुलच सके..."

"गीत के लिए ये शब्द बड़े सुन्दर हैं, मेरे बेटे..."

"लाखों-करोड़ों कण्ठ अब इस गीत को गाते हैं और पूरी दुनिया ही अधिकाधिक ध्यान से इसे सुन रही है... जरा याद करके बताओ—क्या तुम भी पहले कभी इतने धीरज और प्यार से मेरी या पाओलो की बातें सुनती थीं?"

"यह ठीक है। लेकिन...हड़ताल ने तुम्हें अपना जन्म-नगर छोड़ने को मजबूर कर दिया न..."

"दो के लिए वह काफी बड़ा नहीं। अच्छा है कि पाओलो ही यहां रहे। लेकिन हड़ताल तो हमने जीत ली..."

"जीत ली," युवती ने जोर देकर कहा, "तुमने और पाओलो ने..."

अपनी बात अधूरी छोड़कर वह धीरे से हंस दी और फिर क्षण भर को तीनों चुपचाप चलते रहे। अंधेरे में एक टीला-सा उभरकर सामने आ गया। वास्तव में वह किसी इमारत के खण्डहरों का ढेर था। उसके ऊपर सफेदे के पेड़ की पतली-पतली शाखायें विचारमग्न-सी लटकी थीं। ये तीनों जब पेड़ के करीब पहुंचे तो उसकी शाखायें मानो धीरे-से सिहरीं।

"लो— वह रहा पाओलो," युवती ने कहा।

लम्बे कद की काली-सी आकृति खण्डहरों में से निकलकर सड़के के बीच आ खड़ी हुई।

"मन की आंखों से देख लिया था क्या?" युवक ने हंसते हुए पूछा।

सामने से भारी आवाज गूंजी :

"तो जा रहे हो?"

"हां। और ये रहीं—मेरी मां तथा बहन जिनकी तुम्हें देखभाल करनी होगी। तुम लोग अब मेरे साथ आगे नहीं चलो, इसकी जरूरत नहीं है। रोम तक पहुंचने में मुझे सिर्फ पांच घण्टे लगेंगे और मैं जान-बूझकर पैदल जा रहा हूं, ताकि रास्ते में कुछ सोच-विचार कर सकूं..."

सभी रुक गये...लम्बे कदवाले ने अपना

टोप उतार लिया और तनिक आर्द्र आवाज में कहा :

"मां और बहन के बारे में तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं—इन्हें कोई कष्ट नहीं होगा!"

"मैं जानता हूं। विदा, मां!"

मां धीमे से सिसकी, कराही, इसके बाद तीन जोरदार चुम्बन और मर्दाना आवाज में ये शब्द सुनायी दिये :

"घर जाकर चैन से आराम करो। इन तूफानी दिनों में काफी चिन्ता कर चुकीं! जाओ, परेशान होने की कोई बात नही! पाओलो भी तो तुम्हारे लिये मेरे जैसा ही बेटा है! तो प्यारी बहन, अब तुमसे भी..."

फिर से चुम्बन और पत्थरों पर पैरों की खरखरी आहट सुनायी दी। रात की सधी-बधी नीरवता सारी ध्वनियों को दर्पण की भांति प्रतिबिम्बित कर रही थी।

अंधेरे की चादर में लिपटी हुई चार आकृतियां एक-दूसरी में सिमटकर एक बड़ा शरीर बन गयीं और देर तक अलग नहीं हो पायीं। आखिर चुपचाप अलग हुई—तीन आकृतियां धीरे-धीरे नगर की बत्तियों की ओर चल दीं और एक आकृति तेजी से कदम उठाती हुई आगे, पश्चिम की ओर बढ़ चली जहां सन्ध्या की लाली लुप्त हो चुकी थी और नीले आकाश में अनेकानेक उज्ज्वल सितारे जगमगा उठे थे।

दूरी से आशा पैदा करती हुई यह आवाज आयी :

"विदा! उदास नहीं होना, जल्द ही मिलेंगे..."

लड़की के खड़ाऊं ठक-ठक की आवाज करते हुए बज रहे थे, खरखरी आवाज वाले ने तसल्ली देते हुए ये शब्द कहे :

"उसके साथ सब कुछ ठीक-ठाक रहेगा, दोन्ना फिलोमेना। मेरी इस बात पर आप वैसे ही विश्वास कर सकती हैं जैसे अपनी मदोन्ना की कृपा पर। उसके पास अच्छा दिमाग और मजबूत दिल है, वह खुद प्यार करना जानता है और आसानी से दूसरों को अपने से प्यार करने को विवश कर सकता है... और लोगों के प्रति प्यार ही तो वे पंख हैं जो आदमी को सबसे अधिक ऊंचाई पर पहुंचा देते हैं..."

नगर अंधेरे में अपनी छोटी-छोटी और मन्द रोशनीवाली बत्तियों को बढ़ाता जा रहा था और लम्बे कद के व्यक्ति के शब्द भी रोशनियों की तरह ही चमकते थे।

"जब किसी व्यक्ति के हृदय में दुनिया को एकजुट करनेवाले शब्द होते हैं तो उसे हर जगह उसका ऊंचा मूल्य आंकनेवाले लोग भी मिल जाते हैं—हर जगह ही!"

नगर की रक्षा-दीवार से सटा हुआ एक छोटा-सा सफेद भटियारखाना अपने रोशन दरवाजे की चौकोर आंख से लोगों को मानो अपनी ओर खींच रहा था। दरवाजे के निकट ही छोटी-छोटी तीन मेजों पर काली-काली आकृतियां हो-हल्ला मचा रही थीं, गिटार के तारों के दर्दभरे स्वर निकल रहे थे, मैंडोलिन की कांपती-सिहरती ध्वनियां गूंज रही थीं।

ये तीनों प्राणी जब दरवाजे के निकट पहुंचे तो संगीत बन्द हो गया, आवाजें धीमी हो गयीं और उनमें से कुछ लोग उठकर खड़े हो गये...

"नमस्ते, साथियो!" लम्बे कदवाले ने कहा।

और कोई दसेक आवाजों ने खुशी तथा हार्दिकता से जवाब दिया :

"नमस्ते, साथी पाओलो! हमारे पास आये हैं? शराब का एक एकाध जाम?"

"नहीं... धन्यवाद!"

मां ने गहरी सांस लेकर कहा :

"हमारे सभी लोग तुम्हें भी बेहद प्यार करते हैं..."

"हमारे सभी लोग, यही कहा है न आपने, दोन्ना फिलोमेना?"

"ऐ, मेरी बात की हंसी नहीं उड़ाओ... अपनी जनता से मैं अपरिचित-अजनबी नहीं हूं..तुमको और उसको सभी प्यार करते हैं..."

लम्बे नौजवान ने युवती का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा :

"सभी, और एक यह भी... ठीक है न?"

"हां," युवती ने धीमे से कहा। "बेशक ठीक है..."

मां तनिक हंस दी :

"ओह, मेरे बच्चो!... जब तुम्हारी बातें सुनती हूं और तुम लोगों को देखती हूं तो यह यकीन हो जाता है कि तुम लोगों की जिन्दगी हमसे बेहतर होगी..."

और तीनों पास ही में नगर की सड़क पर आंखों से ओझल हो गये जो पुरानी और घिसी-फटी पोशाक की आस्तीन की तरह तंग और खस्ताहाल थी...

●

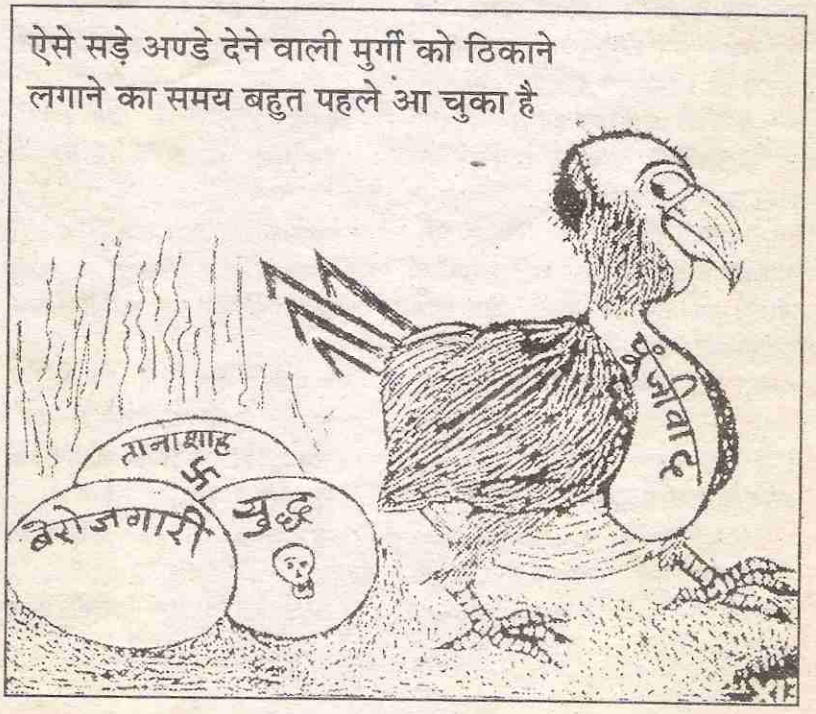

(पृष्ठ 4 का शेष)

जनता को ही झेलना पड़ता है। ऐसी ही एक आफत का नाम है—पोटो। पोटो में कहा गया है कि -"आतंकवादियों को बढ़ावा देने वाले हिमायती भी दोषी", तो इससे सबसे पहला नम्बर तो शासक वर्ग का आता है क्योंकि इन्हीं की गलत नीतियों से आतंकवाद पनपता है, जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अमेरिका है, जिसने ओसामा बिन लादेन का पैदा किया।

किसी एक आदमी को मारने से आतंकवादी प्रवृत्ति नष्ट हो जायेगी, इसकी कोई गारण्टी नहीं है।

हो सकता है पोटो लाने वाले लोग यह सोचते हैं कि इसके लागू होने से आम लोगो को परेशानी और भय पैदा होगा और भयवश उनकी विरोध की प्रकृति खत्म हो जायेगी तो यह उनकी भूल है। इतिहास गवाह है कि भय द्वारा चलाया जा रहा शासन ज्यादा दिन तक नहीं टिकता और विद्रोह की भावना और भी बलवती होती है।

वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था जब तक कायम रहेगी तब तक आतंकवाद किसी न किसी रूप में विद्यमान रहेगा। चाहे इसके लिये कोई भी कानून बनाया जाये।

जब तक मुनाफे के लिये उत्पादन पद्धति का नाश नहीं होता है, तब तक आतंकवाद, अराजकतावाद,मादक द्रव्यों की तस्करी, भ्रष्टाचार इत्यादि समाजद्रोही प्रवृत्तियां कायम रहेंगी और सम्पूर्ण मानव समाज को पतनोन्मुख करेंगी।

यदि वास्तव में हम इन सब बुराइयों को समाप्त करना चाहते हैं तो मुनाफे पर टिकी उत्पादन प्रणाली को बदलना होगा,तभी आतंकवादी विचार, आतंकवाद एवं अराजकतावाद उत्पन्न करने वाले कारण एवं स्रोतों का समापन होगा और एक नवीन,सुन्दर विश्वव्यवस्था की स्थापना होगी।

—माला शुक्ला, सिंघला, गोरखपुर

आह्वान मार्ग प्रशस्त करता है।

जुलाई-सितम्बर का आह्वान पढ़ा। शशिप्रकाश कृत 'अगर तुम युवा हो' की प्रत्येक पंक्ति हृदय को छू गयी। मक्सिम गोर्की की कहानी 'दान्को का जलता हृदय' काल्पनिक धरातल पर प्रतीत होते हुए भी प्रेरित करने की अकथनीय क्षमता से परिपूर्ण थी। वास्तव में आज एक आम आदमी के पास एक हजार एक से भी अधिक कारण हैं कि वह वर्तमान भ्रष्ट एवं पतनोन्मुख व्यवस्था से विद्रोह करे। आज प्रत्येक उपेक्षित नागरिक समाज व सत्ता में परिवर्तन चाहता है। परन्तु इस परिवर्तन हेतु-वह किस दिशा में कदम उठाये, आपका 'आह्वान' इस संबंध में मार्ग प्रशस्त करता है।

इस अंक के पाठक मंच में प्रकाशित 'सहगामिनी' एवं 'स्वतंत्रता' कविताएं मर्मस्पर्शी व वास्तविकता का प्रतिबिम्ब लगीं। मैंने, इसी क्रम में, शिक्षा जगत सम्बन्धी अपने कुछ विचारों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है।

वे, और उनकी नीतियां

वे, शिक्षा को मौलिक अधिकार बना रहे हैं
देश का भविष्य, सुनिश्चित करने को
विश्वविद्यालयों में ज्योतिष पढ़ा रहे हैं
वे खुश हैं; देश को सम्पन्न परिवारों के, अच्छे स्कूलों में पढ़े
सभ्य, जागरूक नागरिक ही चलायेंगे
इसके मद्देनज़र,पाठ्यक्रम नवीनीकरण पर
निरर्थक बहस छेड़ कर
वास्तविक मुद्दे से भटका रहे हैं
टाटा, बिड़ला, अम्बानी के ध्यान मात्र से
जिन्हें हार्दिक प्रसन्नता मिलती है
एक मीटर बरसाती में भूखे पेट, नंगे बदन
आधे कांपते, आधे सोते
पांच जन साक्षात् देखकर भी उनकी
संवेदन ग्रन्थियां नहीं हिलती हैं।

वे नीतियां बना रहे हैं
कि ट्रक से बोरियां उतारने
ढाबे पर कांच के गिलास ध्यान से धोते
कूड़ाघरों से काम का कचरा बीनते
दो वक्त की रोटी को पटाखे, बीड़ियां बनाते
स्कूल जाने की उम्र में, फैक्ट्रियों को जाते
उन्हीं के ऐशो-आराम के सामान जुटाते
गोरी की चूड़ियों पर मनोरम रंग चढ़ाते
अपनी बदरंग जिन्दगी ढोते, चाहते न चाहते
वे नन्हें हाथ, वे उदास चेहरे
स्वतंत्र चिंतन, स्वच्छ मानसिकता के
पतन का पर्याय बन जाए
सरकारी कागजों में
अपना नाम भर लिखना सीख लें
प्रशासन और सरकार से
साक्षरता की भीख लें।
पर नहीं जानते वे
हनन की इन नीतियों के चलते
वंचित तबके जब मिलकर
अपनी जमीन को तलाशने सचेतन
उनसे हिसाब करेंगे
क्रांति के कुछ अध्याय
आने वाली किताबों में मिलेंगे।

—मोनिका 'यामिनी', रोहिणी, दिल्ली

टूट-फूट,बिखराव क्यों?

आह्वान के अंकों में छात्र-छात्राओं के केन्द्रीयकरण पर ध्यान दिया जाय तो अच्छा है। क्योंकि विगत अनेकों वर्षों के अनुभव रहे कि ग्रुपबाजी से एक पार्टी और फिर पार्टी के निर्माण की दुर्दशा हुई। आज हम देख रहे हैं कि भाई-भाई से झंडे डंडे के अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। आज हम भटके हुए मुसाफिर की तरह चल रहे हैं। न सही सोच है, न समझ और न समझने के लिए तैयार हैं। एक मजबूत केन्द्रीयता न होने के कारण हमलावर ताकतें अपना जाल बखूबी फैला रही हैं। ऐसे समय में मौन रहना हमारी आपसी समझ को सिद्ध कर रहा है। हमें विचार करना पड़ेगा कि यदि हमारी विचारधारा और मंजिल एक है, भले हमारा रास्ता कुछ भी हो, तो आपसी फूट और टकराहट क्यों?

हम आह्वान से चाहते हैं कि सारी छात्रशक्ति का अपनी कलम की ताकत से आह्वान करे ताकि एक केन्द्रीय ताकत के रूप में अपने आप को छात्र संगठित करने में सफल हो सकें। यही प्रक्रिया 'विकल्प' के माध्यम से भी चलायी जा रही है। हो सकता है हमारा सोचना गलत हो, किन्तु पत्र के माध्यम से अवगत कराने का प्रयास करें।

—एस.के.जायसवाल, महरौली, दिल्ली

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता बेहतर किताबों से होकर जाता है

घटिया साहित्य के घटाटोप और अपसंस्कृति के अंधेरे में उत्कृष्ट, स्तरीय, जनपक्षधर, क्रान्तिकारी, क्लासिकी साहित्य को जन-जन तक पहुंचाने का एक अभियान

आम लोगों के लिए
जरूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुंचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर-घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज हवा का झोंका बन जाना होगा
जिन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुंचाना होगा।

ऐसी किताबों को जन-जन तक पहुंचाना नये सर्वहारा नवजागरण-प्रबोधन का एक जरूरी कार्यभार है। वैकल्पिक मीडिया खड़ा करने की मुहिम का एक अहम कदम है। बड़बोली विज्ञापनबाजी से दूर, 'जनचेतना' पिछले पन्द्रह वर्ष से चुपचाप इस अभियान में जुटी है।

आज जब किताबें मुख्यतः पुस्तकालयों में कैद हो जाने के लिए छापी जा रही हैं और आम पाठकों और किताबों के बीच दूरी बढ़ती जा रही है, 'जनचेतना' अपने चार मुख्य वितरण केन्द्रों, अनेक छोटे स्टालों तथा वर्षभर चलने वाली छोटी-बड़ी प्रदर्शनियों के जरिए किताबों को लेकर सीधे पाठकों के बीच जाती है, नये पाठक और पुस्तकप्रेमी तैयार करती है। इसके कार्यकर्ता झोले में किताबें लेकर घरों, दफ़्तरों, कारखाना गेटों, मजदूर बस्तियों और कालेजों में जाते हैं।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ के बिना, समर्पित वालंटियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

'परिकल्पना प्रकाशन' और 'राहुल फाउण्डेशन' के प्रकाशन प्रभाग की पुस्तकों का 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पांच स्रोतों—सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कारपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और विदेशी फण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए जरूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

परिकल्पना प्रकाशन की नई प्रस्तुतियां

मक्सिम गोर्की की सात पुस्तकों का गुलदस्ता

फोमा गोर्देयेव (उपन्यास)

गोर्की के श्रेष्ठतम उपन्यासों में से एक। क्रान्तिपूर्व रूस के व्यापारी वर्ग के जीवन की जीवन्त तस्वीर जिसमें पैसे के पीछे भागना ही सबकुछ हैऋ पैसा ही भगवान है; सभी मानवीय सम्बन्ध आना-पाई के स्वार्थपूर्ण हिसाब-किताब में डूब चुके हैं। नये जीवन के प्रात के पहले पुराने जीवन का अंधेरा और गहरा गया है। हिन्दी में कई दशकों बाद उपलब्ध।

पृष्ठ : 256 मूल्य : रु. 55.00 (पेपरबैक)/ रु. 110.00 (सजिल्द)

अभागा (उपन्यास)

एक मानवद्रोही समाज व्यवस्था में संवेदनशील इंसान की त्रासदी। हिन्दी में कई दशकों बाद उपलब्ध।

पृष्ठ : 128 मूल्य : रु. 25.00 (पेपरबैक) रु. 50.00 (सजिल्द)

बेकरी का मालिक (उपन्यास)

हिन्दी में कई दशकों बाद उपलब्ध।

पृष्ठ : 110 मूल्य : रु. 25.00 (पेपरबैक)/ रु. 50.00 (सजिल्द)

तलछट (नाटक)

विश्व के श्रेष्ठतम नाटकों में से एक। शोषक समाज में तलछट का जीवन बिताने को मजबूर निचले तबकों के जीवनसंघर्ष, अन्यायी व्यवस्था के प्रति उनके दिल में जलती नफरत, कड़वाहट और रूखेपन की ऊपरी परत के भीतर उनमें छिपे भाईचारे, एकता और उदात्त मानवीय गुणों का अविस्मरणीय चित्रण करने वाली कृति।

पृष्ठ : 128 मूल्य : रु. 30.00 (पेपरबैक)/ रु. 60.00 (सजिल्द)

चुनी हुई कहानियां (खण्ड दो)

गोर्की की तैंतीस कहानियों का संकलन। पहली बार काल-क्रम से व्यवस्थित करके, एक साथ तीन खण्डों में प्रकाशित।

पृष्ठ : 264 मूल्य : रु. 50.00 (पेपरबैक)/ रु. 100.00 (सजिल्द)

सृजन की प्रक्रिया और शिल्प के बारे में

गोर्की के विचारोत्तेजक निबन्धों और भाषणों का संकलन।

पृष्ठ : 160 मूल्य : रु. 30.00 (पेपरबैक)/ रु. 60.00 (सजिल्द)

तोल्स्तोय : एक शब्दचित्र

विश्व के महानतम उपन्यासकारों में से एक, लेव तोल्स्तोय के प्रिय शिष्य और मित्र गोर्की की जादुई कलम से उनका बेहद जीवन्त और दिलचस्प शब्दचित्र और संस्मरण।

पृष्ठ : 80 मूल्य : रु. 20.00 (पेपरबैक)/ रु. 40.00 (सजिल्द)

ooo ooo ooo

अंतोन चेखव : चुनी हुई कहानियां (दो खण्डों में)

विश्व के सार्वकालिक उत्कृष्टतम कहानीकारों में से एक अंतोन चेखव की चुनिन्दा कहानियों का संकलन।

पृष्ठ : 250 मूल्य : रु. 60.00 (पेपरबैक)/ रु. 120.00 (सजिल्द)

जे.वी. स्तालिन : मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएं
पृष्ठ : 48 मूल्य : रु. 15.00 (पेपरबैक)

निकोलाई आस्त्रोवस्की : जय जीवन!
'अग्निदीक्षा' उपन्यास से दुनियाभर में करोड़ों देशभक्त, क्रान्तिकारी नौजवानों के दिल में जगह बना लेने वाले निकोलाई आस्त्रोवस्की के लेखों, इंटरव्यू और पत्रों का संकलन। एक बेहद प्रेरणादायी पुस्तक। हर युवा के लिए एक जरूरी संकलन।
पृष्ठ : 220 मूल्य : रु. 50.00 (पेपरबैक)/ रु. 100.00 (सजिल्द)

बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव
दर्शन, साहित्य और आलोचना
बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की और दोब्रोल्युबोव क्रान्तिपूर्व के उन रूसी विचारकों और लेखकों में से थे जिन्होंने कठिनाइयों और दमन के झंझावातों से जूझते हुए दर्शन और साहित्य में जनवाद के उसूलों और मूल्यों की मशाल प्रज्ज्वलित रखी और रूसी क्रान्तिकारियों की भावी पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त किया। एक अत्यन्त प्रेरणादायी संकलन।
पृष्ठ : 256 मूल्य : रु. 60.00 (पेपरबैक)/ रु. 120.00 (सजिल्द)

विमल कुमार : यह मुखौटा किसका है
'सपने में एक औरत से बातचीत' के चर्चित युवा कवि विमल कुमार का दूसरा कविता संग्रह।
पृष्ठ : 120 मूल्य : रु. 35.00 (पेपरबैक)/ रु. 75.00 (सजिल्द)

राहुल फाउण्डेशन के नये प्रकाशन

उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है
('दायित्वबोध' के महत्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन)
भारतीय समाज के आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक संकट, फासीवादी उभार की चुनौतियों, पूंजीवाद और साम्राज्यवाद की प्रकृति, स्वरूप और संकट, भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन के भटकावों, चुनौतियों, कार्यभारों और विकल्प के सवालों पर अठारह विचारोत्तेजक लेखों का एक जरूरी संग्रह
पृष्ठ : 224 मूल्य : रु. 60.00 (पेपरबैक)

एनजीओ : एक खतरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र
आधिकारिक विद्वानों और जमीनी कार्यकर्ताओं की कलम से एन.जी.ओ. कुचक्र के सभी पहलुओं को उजागर करने वाली एक बेहद जरूरी किताब।
पृष्ठ : 104 मूल्य : रु. 25.00 (पेपरबैक)

माओ त्से-तुङ : दर्शन विषयक पांच निबन्ध
• व्यवहार के बारे में • अन्तरविरोध के बारे में • जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में • सही विचार आखिर कहां से आते हैं? • प्रचार-कार्य पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण
पृष्ठ : 128 मूल्य : रु. 25.00 (पेपरबैक)

माओ त्से-तुङ : कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पांच दस्तावेज पृष्ठ : 48 मूल्य : रु. 12.00 (पेपरबैक)

लेनिन : तोल्स्तोय के बारे में मूल्य : रु. 8.00 (पेपरबैक)

बोल्शेविक पार्टी का इतिहास पृष्ठ:352 मूल्य : 80/- (प्रेस में)

Mao Tse-tung
Selected Readings
A selection of Mao's most important articles.
Pages : 508 Price : Rs. 65.00

आज की विशेष परिस्थिति में बेहद जरूरी
वी. आई. लेनिन की आठ पुस्तकें

समाजवाद और युद्ध
मूल्य : रु. 10.00 (पेपरबैक)

साम्राज्यवादः पूंजीवाद की चरम अवस्था
मूल्य : रु. 25.00 (पेपरबैक)

राज्य और क्रान्ति
मूल्य : रु. 25.00 (पेपरबैक)

सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की
मूल्य : रु. 15.00 (पेपरबैक)

दूसरे इण्टरनेशनल का पतन
मूल्य : रु. 10.00 (पेपरबैक)

गांव के गरीबों से
मूल्य : रु. 10.00 (पेपरबैक)

मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद
मूल्य : रु. 10.00 (पेपरबैक)

कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा
मूल्य : रु. 10.00 (पेपरबैक)

बिगुल पुस्तिका-चार
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल
पृष्ठ : 52 मूल्य : रु. 12.00 (पेपरबैक)

बिगुल पुस्तिका-पांच
पेरिस कम्यून की अमर कहानी
पृष्ठ : 48 मूल्य : रु. 12.00 (पेपरबैक)

अन्य पुस्तकों के कैटलाग तथा पुस्तकें मंगाने के लिए आज ही हमसे सम्पर्क करें :

जनचेतना

डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8)

जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001

81, समाचार अपार्टमेण्ट, मयूर विहार फेज-एक, दिल्ली-110091

email : janchetna@rediffmail.com

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता बेहतर किताबों से होकर जाता है!

परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकें

मां
मक्सिम गोर्की का अमर उपन्यास
पृष्ठ 448 • 70 रुपये

शहीदेआजम की जेल नोटबुक
एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ साक्ष्य • भारतीय इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज • भगतसिंह की शहादत के 68 वर्ष बाद हिन्दी में पहली बार प्रकाशित ❑ पृष्ठ 200 • 50 रुपये

विचारों की सान पर
भगतसिंह और उनके साथियों के चुने हुए दस्तावेज़, पत्र और वक्तव्य ❑ पृष्ठ 104 • 20 रुपये

माओ त्से-तुङ की कविताएं
राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियों के साथ
अनुवाद एवं सम्पादन : सत्यव्रत ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

चिरस्मरणीय
कय्यूर के किसान आन्दोलन के शहीदों पर लिखा निरंजन का प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास, अनुवाद : रामकृष्ण पाण्डेय ❑ पृष्ठ 168 • 35 रुपये

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट : इकहत्तर कविताएं और तीस छोटी कहानियां
मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल ❑ पृष्ठ 148 • 60 रुपये

लहू है कि तब भी गाता है
(पाश के सभी संग्रहों से चयनित प्रतिनिधि कविताओं का संकलन)
संपादक : चमनलाल एवं कात्यायनी ❑ पृष्ठ 176 • 75 रुपये

चुनी हुई कहानियां : मक्सिम गोर्की (पहला खण्ड)
पृष्ठ 168 • 35 रुपये

पांच कहानियां : पुश्किन ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

दो अमर कहानियां : लू शुन ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

श्रेष्ठ कहानियां : प्रेमचंद ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

तीन कहानियां : गोगोल ❑ पृष्ठ 144 • 30 रुपये

दुर्ग द्वार पर दस्तक
कात्यायनी ❑ पृष्ठ 152 • 50 रुपये (द्वितीय संशोधित संस्करण)

माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य
रेमण्ड लोट्टा के दो महत्वपूर्ण लम्बे लेखों का संकलन
पृष्ठ 104 • 25 रुपये

समर तो शेष है...
इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का अनन्य संकलन ❑ पृष्ठ 144 • 35 रु. रुपये

क्रान्ति का विज्ञान
लेनी वुल्फ ❑ पृष्ठ 36 • 10 रुपये

अब इंसाफ होने वाला है
उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का प्रतिनिधि संकलन
संपादक : शकील सिद्दीकी ❑ पृष्ठ 248 • 75 रुपये

मध्यवर्ग का शोकगीत
हान्स माग्नुस एंत्सेंसबर्गर की कविताएं
सम्पादन एवं अनुवाद : सुरेश सलिल ❑ पृष्ठ 72 • 25 रुपये

राहुल फाउण्डेशन के प्रकाशन

माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण 35 रुपये

Quotations from Mao Tse-Tung 40 रुपये

पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन —*लेनिन* 15 रुपये

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद —वी. अदोरात्सकी 15 रुपये

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (दो खण्डों में)
(दि शंघाई टेक्स्टबुक आफ पोलिटिकल इकॉनमी) प्रत्येक खण्ड : 60 रुपये

कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र
—कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स 10 रुपये

बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में —चाङ चुन-चियाओ 3 रुपये

मई दिवस का इतिहास —अलेक्जेण्डर ट्रैक्टनबर्ग 3 रुपये

अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन —एल्बर्ट रीस विलियम्स 75 रुपये

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं
—*दीपायन बोस* 10 रुपये

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति —शशिप्रकाश 12 रुपये

क्यों माओवाद —शशिप्रकाश 10 रुपये

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा
—वी.आई. लेनिन 5 रुपये

मकड़ा और मक्खी —विल्हेल्म लीब्कनेख्त 2 रुपये

ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके
—सर्जी रोस्तोवस्की 2 रुपये

राहुल फाउण्डेशन एवं परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकों के मुख्य वितरक :

जनचेतना

डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020 ✆ (0522) 788932
(व्यक्तिगत प्रतियों के लिए 12 रुपए रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर ड्राफ्ट या एम.ओ. भेजें)

खत्म करो पूंजी का राज! लड़ो, बनाओ लोक स्वराज!

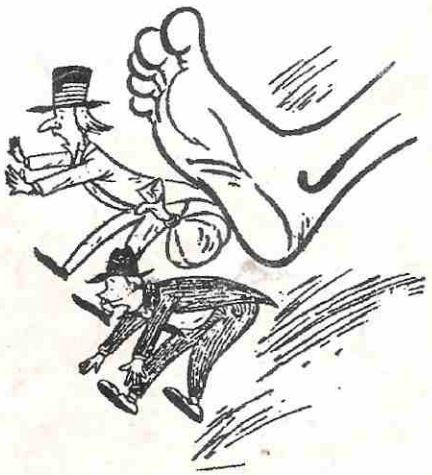

गांव-गांव में अलख जगाकर
विदेशी लूट मिटाएंगे
देशी कफनखसोटों को भी
लड़कर मार भगाएंगे
कसम शहीदों की भारत में
लोक स्वराज बनाएंगे

"...हम मानते हैं कि नये सिरे से सब कुछ शुरू करना होगा। मेहनतकश जनता के राज्य और समतामूलक समाज के निर्माण की परियोजनाओं को पुनर्जीवित करना होगा। पूरी दुनिया के पैमाने पर, पिछली सदी के आखिरी चौथाई हिस्से के दौरान मेहनतकशों के इंकलाबों का कारवां रुक-सा गया है और भटका और बिखरा भी है। पूंजीवादी लूट और हुकूमत के तौर-तरीकों में भी अहम बदलाव आये हैं। उन्हें समझना होगा और नई क्रान्तियों की राह निकालनी होगी। यह कठिन है पर असम्भव नहीं। हर नया काम कठिन लगता है। हर नई शुरुआत मजबूत संकल्पों की मांग करती है। इतिहास के हजारों वर्षों के सफर का यह सबक है और पूंजीवादी लूटतंत्र के असाध्य संकटों और लाइलाज बीमारियों को देखते हुए यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि पराजय झेलने के बाद क्रान्तियां फिर से परवान चढ़ेंगी। यह सदी नई, फैसलाकुन क्रान्तियों की सदी होगी।

यह हमारा दृढ़ विश्वास है और इस विश्वास के पर्याप्त कारण हैं कि भारत की मेहनतकश जनता भी इस नये विश्व-ऐतिहासिक महासमर में पीछे नहीं रहेगी, बल्कि अगली कतारों में रहेगी। 85 फीसदी लोगों के दुखों और बर्बादियों के सागर में 15 फीसदी लोगों के समृद्धि के टापू और उन पर खड़ी विलासिता की मीनारें हमेशा के लिए कायम नहीं रह सकती। यह तूफान के पहले का सन्नाटा है। इसीलिए हुक्मरान बेचैन हैं। तरह-तरह के नये-नये काले कानून बनाकर, पुलिस-फौज को चाक-चौबन्द करके वे निश्चिन्त होना चाहते हैं, पर हो नहीं पाते। उन्हें लगने लगा है कि आम जनता को बांटने-बरगलाने के लिए उछाले जाने वाले मुद्दे और छोड़े जाने वाले शिगूफे भी बहुत दिनों तक काम नहीं आयेंगे। पूंजीवादी जनतंत्र की कलई चारों ओर से उतर रही है। नया रंग-रोगन टिकता नहीं। इसलिए भारत की पूंजीवादी राज्यसत्ता फासिस्ट निरंकुशशाही की ओर खिसकती जा रही है।

इसलिए, 'क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान' के जरिए हम इतिहास को गढ़ने वाले और अपने बलिष्ठ हाथों से समय के प्रवाह को मोड़ देने वाले मेहतनकश अवाम के पराक्रम को ललकार रहे हैं और एक नई, कठिन और निर्णायक लड़ाई की तैयारी में शामिल होने के लिए उन तमाम लोगों को निमंत्रण दे रहे हैं, जिनकी आत्माएं युवा हैं, जो सच्चे अर्थों में जिन्दा हैं।"

दिशा छात्र संगठन, बिगुल मज़दूर दस्ता, देहाती मज़दूर-किसान यूनियन, नारी सभा, दायित्वबोध मंच और नौजवान भारत सभा की ओर से पिछले छह वर्षों से चलाये जा रहे **क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान** के पर्चा संख्या-4 के अंश

प्रमुख सम्पर्क : ❑ बिगुल, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ❑ 'आह्वान' कार्यालय, संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, गोरखपुर
❑ विजयकुमार, 55/3, ई.डब्ल्यू.एस., आवास विकास, रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर ❑ पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत, हरियाणा
❑ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार फेज-एक, दिल्ली-91